खण्ड 2
भारत में संसदीय लोकतंत्र

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 भारतीय संघवाद

संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भारत में संघवाद

5.2.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

5.2.2 भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएँ

5.2.3 भारतीय संविधान की एकात्मक विशेषताएँ

5.3 भारतीय संविधान के तहत शक्तियों का विभाजन

5.3.1 विधान क्षेत्र

5.3.2 प्रशासनिक क्षेत्र

5.3.3 वित्तीय क्षेत्र

5.4 भारतीय संघवाद के कार्य

5.5 सारांश

5.6 संदर्भ और अन्य उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- संघवाद के अर्थ और विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- भारत में संघीय प्रणाली की खास विशेषताओं की सूची बना सकेंगे;
- भारत में केन्द्र–राज्य संबंधों के कार्य पर विस्तार से व्याख्या कर सकेंगे; और
- भारत में संघीय प्रणाली के कार्य में आने वाली समस्याओं और बाधाओं को विश्लेषण कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

हमने सरकार की एक संघीय प्रणाली को अपनाया है, जिसमें संघ स्तर और राज्य स्तर पर सरकार के दो स्तर है। इस इकाई में हम संघीय प्रणाली की विशेषताएँ जैसे कि भारत में संचालन और इनके बीच सम्बन्ध पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

5.2 भारत में संघवाद

भारतीयीय संघवाद की विशेषताओं की यहाँ चर्चा की गयी हैः

5.2.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक रूप से, 1930 के दशक में मध्य तक भारतीय सरकार मूल रूप से एकात्मक हुआ करती थी। हालांकि इसके विकेन्द्रीकरण की दिशा में कदम बहुत पहले ही उठाए जा

चुके थे प्रथम विश्व युद्ध के अन्त तक, यह महसूस किया जाने लगा कि एकात्मक सरकार भारतीय प्रशासन प्रणाली के लिए उपयुक्त नहीं है। 1919 के अधिनियम ने 'diarchy' की शुरूआत की, जिसे ब्रिटिश भारत में संघवाद की दिशा में पहला कदम माना जा सकता है। इसके अलावा, भारत सरकार अधिनियम, 1935 का अधिनियम विशेष रूप से प्रांतीय स्वायत्तता के लिए प्रदान किया गया। जब 1946 में संविधान सभा की बैठक हुई, तो इस पर भारत में संघीय सरकार बनाने पर सहमति हुई। भारत के संविधान ने 1935 अधिनियम के कई प्रावधानों को सम्मिलित किया, लेकिन इसमें कहीं भी 'संघवाद' शब्द का उपयोग नहीं किया गया।

5.2.2 भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएँ

भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1) कठोरता

सामान्य कानूनों को पारित करने की तुलना में संविधान में संशोधन करना कठोर है। अगर संविधान के उन हिस्सों से संबंधित करना है, जो संघ और राज्यों के बीच संबंधों को करते हैं तो यह आवश्यक होता है कि संसद में उपस्थित दो–तिहाई सदस्यों द्वारा पारित किया जाए और संसद में मतदान हो तथा भारतीय राज्यों के आधे राज्यों द्वारा अनुसमर्थन किया जाने की भी आवश्यकता होती है।

2) लिखित संविधान

भारत का संविधान लिखित संविधान है, जो सर्वोच्च कानून का प्रावधान देता है केन्द्र और राज्य दोनों सरकारें अपनी शक्तियों को इससे प्राप्त करती है। यह सरकारों के दो स्तरों के बीच एक लिखित अनुबंध के रूप में कार्य करता है।

3) शक्तियों का विभाजन

महासंघ का गठन इस उद्देश्य से किया जाता है ताकि संघ ओर राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन हो। भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्य सरकारों की सीमाओं को व्यापक रूप से परिभाषित किया गया है। संविधान की तीन सूचियाँ है[1], जो इस प्रकार हैं: संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। समवर्ती सूची में अवशिष्ट विषय सम्मिलित हैं, जिस पर दोनों सरकारें कानून बना सकती हैं। वास्तव में, यह माना गया था कि कुछ क्षेत्रों में राष्ट्रीय हित में केंद्रीय समन्यव वांछनीय होगा इसीलिए राष्ट्रीय और सामान्य हित के दोनों विषयों को दोनों सरकारों के समवर्ती क्षेत्राधिकार में रखा गया था। द्विसरकारी[2] स्तरों के अधिकार क्षेत्र को परिभाषित करने का प्रयास संविधान के संघीय दावे का समर्थन करता है।

4) स्वतंत्र न्यायापालिका

भारतीय संविधान सर्वोच्च न्यायालय औरउच्च न्यायालयों द्वारा सरकारी विधानों की न्यायिक समीक्षा की व्यवस्था प्रदान करता है न्यायपालिका किसी भी सरकार के एक अधिनियम को हटा सकती है, अगर वह संविधान के प्रावधानों के खिलाफ जाता है या यदि कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के लिए सहमति के बिना पारित किया गया है यह भारतीय संविधान के संघीय चरित्र को उजागर करता है।

---

[1] तीन सूचियों के विषय

[2] दोनों सरकारें समवर्ती सूची के किसी भी विषय पर एक ही समय पर कानून बना सकती है, यही केन्द्र सरकार का नियम है जो कि लागू है।

5) द्विसदन

द्विसदन का अर्थ है संसद के दो सदन है– एक निम्न सदन और उच्च सदन या संघवादी इकाईयों का प्रतिनिधित्व करने वाला दूसरा कक्ष। भारतीय संसद भी द्विसदनीय है। इसके दो सदन हैं अर्थात् निम्न सदन – लोकसभा और उच्च सदन – राज्यों की परिषद् अर्थात् राज्य सभा[3]।

भारतीय संविधान में भी एकात्मक विशेषताएँ हैं, जैसा कि निम्न वर्णित है।

5.2.3 भारतीय संविधान की एकात्मक विशेषताएँ

हमारे संविधान की एकात्मक प्रवर्षत्ति को उजागर करने वाली विशेषतएँ निम्न दी गई हैंः

1) संविधान में 'संघवाद' शब्द का अभाव

हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान में 'संघवाद' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट रूप से परहेज किया है। ऐसा संविधान निर्माताओं के द्वारा इसीलिए किया गया ताकि वे भारत की एकात्मकता को बनाये रख सके। भारत की संविधान में राज्यों के संघ के रूप में वर्णित किया गया है।

2) संघ और राज्यों के लिए एकल संविधान

केन्द्र और राज्य दोनों सरकारें अपने अधिकार संविधान से प्राप्त करती है। राज्यों का अपना अलग–अलग गठन नहीं है। इससे कानूनों के पालन में एकरूपता आती है।

3) एकल नागरिकता

भारतीय संविधान दोहरी नागरिकता प्रदान नहीं करता है। भारत का प्रत्येक नागरिकता जन्म से भारतीय है। यह केवल एकल नागरिकता है।

4) केन्द्र का वर्चस्व

सैद्धान्तिक रूप से, एक महासंघ में, दोनों सरकारों को एक दूसरे से स्वतंत्र होना चाहिए और किसी को भी दूसरे स्वायत्तता का अतिक्रमण करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। हमारे महासंघ में, राज्यों की तुलना में केन्द्र ज्यादा मजबूत है। राजनीतिक, आर्थिक रूप से मजबूत होने के कारण, केन्द्र कार्यवाइ के प्रांतीय क्षेत्र में पैठ बना सकता है। यह संघवाद की भावना का उल्लंघन कर देता है। यह न केवल 'शक्तियों का वितरण' है। बल्कि यह राजय की स्वायत्तता की संवैधानिक गारंटी है, जो 'शक्तियों के वितरण' को संघवाद का सार बनाता है। भारतीय मामलों में बड़े अधिकार क्षेत्र वाला शक्तिशाली केन्द्र हमेशा राज्यों पर अपना वर्चस्व दिखा सकता है।

भारत में एकात्मक क्षेत्र केन्द्र सरकार द्वारा भी प्रशासित होता है इसके अलावा, 42वें संवैधानिक संशोधन के केन्द्र सरकार को कानून और व्यवस्था संकट से निपटने के लिए किसी भी राज्य में सषस्त्र बल तैनात करने का अधिकार है। केन्द्र द्वारा तय किए गये राज्य उच्च न्यायालयों के साथ, भारत सरकार एक एकीकृत न्यायिक प्रणाली का पालन करती है। इसके अलावा, भारत का सर्वोच्च न्यायालय इन न्यायालयों के फैसलों की पलटने का अधिकार रखती है।

[3] राज्यों द्वारा अपने प्रतिनिधियों को राज्य सभा में भेजा जाता है।

5) संसद का प्रभुत्व

संसद निम्नलिखित तरीके से सर्वोच्च शासन करती है:

- अनुच्छेद 249 के अनुसार, राज्य सभा राज्य सूची में सम्मिलित किसी भी विषय को राष्ट्रहित के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए संसद में स्थानांतरित कर सकती है। हालांकि यह लोगों के सामने एक गलत उदाहरण रखता है। इसका इस्तेमाल आमतौर पर तब किया जाता है जब केन्द्र और राज्यों की ओर से विभिन्न राजनीतिक दल बराबरी पर होते हैं।

- अनुच्छेद 253 के तहत, संसद को पूरे देश या देश के किसी भी हिस्से के लिए कानून बनाने की शक्ति मिली है इसी तरह, यह किसी भी देश या देशों के साथ किसी भी संधि, समझौता और सम्मेलन को लागू करने के लिए निर्णय ले सकता है।

- राज्य विधानमंडल पर संसदीय वर्चस्व भी अनुच्छेद 4 में उल्लेखित है। इस अनुच्छेद के आधार पर, केन्द्र सरकार किसी भी समय किसी भी मौजूदा राज्य की सीमाओं को बदल सकती है, इसे किसी अन्य राज्य के साथ विलय कर सकती है एक मौजूदा राज्य का नया राज्य बना सकती है। एक या एक राज्य को पूरी तरह से समाप्त कर सकता है।

6) राज्यपालों की नियुक्तियाँ और अन्य उच्च नियुक्तियाँ

राज्यपालों को केन्द्र के सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। राज्य के राज्यपाल राष्ट्रपति की अनुमति से उन्हीं के कार्यालय में कार्यारत होते हैं। राज्यपाल की नियुक्ति या हटाने के सम्बन्ध में राज्य सरकार का कोई प्रभाव या अधिकार नहीं होता है। राज्यपाल केन्द्र में केवल एजेंट के रूप में कार्य करता है। राज्यपालों की नियुक्ति के अलावा, उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों, जो राज्य क्षेत्र में आते हैं कि नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

भारतीय प्रशासनिक सेवाओं (आई.ए.एस.) और भारतीय पुलिस सेवाओं (आई.पी.एस.) जैसी अखिल भारतीय सेवाओं (ए.आई.एस.) के संबंध में केन्द्र भी राज्यों पर अपना अधिकार रखता है। अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्य मेधावी होने पर भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। संसद एक नया ए.आई.एस. भी बना सकती है लेकिन तब जब राज्यसभा अपने उपस्थित सदस्यों और उनके मतदान के जरिए 2/3 बहुमत से पारित करती है। केन्द्र द्वारा ए.आई.एस. के सदस्यों के पद और पदोन्नति का तरीका भी तय किया जाता है। संघ लोक सेवा आयोग को अधिकार है कि वह इन अधिकारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई भी शुरू करा सकता है।

भारत के चुनाव आयुक्त और नियंत्रक व महालेखा परीक्षक केन्द्र के सरकारी कर्मचारी होते हैं और वे राज्यों के लिए भी कार्य करते हैं इससे यह समझ आता है कि राज्य सरकारें वास्तव में केन्द्र सरकार के उच्च अधिकारियों द्वारा चलाई जाती है।

7) आपातकाल के बारे में प्रावधान:

अनुच्छेद 352, 356 और 360 में आपातकालीन शक्तियाँ का प्रावधान किया गया है। राज्यपाल को राष्ट्रपति के रूप में ही काम करना होता है अगर राष्ट्र की संप्रभुता को खतरा हो या राज्य में संवैधानिक तंत्र में विघ्न आया हो या सरकार की वित्तीय अस्थिरता और

दिवालियापन को समाप्त करना हो। ये शक्तियाँ अपने प्रभाव में इतनी व्यापक है कि भारतीय राज्य की प्रकृति बहुत हद तक एकात्मक रूप में बदल जाती है।

5.3 भारतीय सवंधिान के तहत शक्तियों का विभाजन

भारतीय संविधान के अनुसार शक्त्यिों का विभाजन मुख्य रूप तीन क्षेत्रों अर्थात् विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय रूप में किया गया है। आगामी अध्ययन में, हम प्रत्येक के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

5.3.1 विधान क्षेत्र

सातवीं अनुसूची के अनुसार, विधायी शक्तियाँ तीन विस्तृत सूचियों में विभाजित है ये सूची हैं संघ सूची, राज्य सूची और समर्ती सूची।

संघ सूची में 97 विषय थे, जो अब बढ़कर 100 विषय हो गयें हैं, इनमें से कुछ में रक्षा, युद्ध व शान्ति, रेलवे, विदेशी मामले आदि सम्मिलित हैं। राज्य सूची, जिसमें आरमभ 66 विषय थे और अब 61 विषय है जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, पुलिस, सिंचाई, जेल आदि, जिन पर राज्य कानून बना सकता है। समवर्ती सूची, जिसमें पहले 47 विषय थे और अब 52 विषय सम्मिलित हैं, जिन पर केन्द्र और राज्य सरकारें दोनों ही कानून बना सकते हैं हालांकि दुविधा की स्थिति में केन्द्र की प्राथमिकता मिलती है ।

संविधान में अवषेश शक्तियों को केन्द्र सरकार के पास छोड़ दिया गया है, जिसका अर्थ है एक ऐसा विषय, जो तीनों में से किसी भी सूची में सम्मिलित नहीं है अनुच्छेद 249 के अनुसार, राज्य सभा अपने सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत एक एक प्रस्ताव पारित कर सकती है और मतदान कराकर यह सिद्ध कर सकती है कि राज्य सूची में एक विशेष विषय राष्ट्रीय महत्व का है ओर इसे कानून बनाने के लिए संसद में स्थानांतरित करने की आवश्यकता है इसके अलावा, राष्ट्रपति द्वारा घोषित आपातकाल के दौरान, संसद को पूरे सराज्य के विषयों के संबंध में कानून बनाने की शक्ति मिलती है। अनुच्छेद 250 के अनुसार, इस तरह के कानून आपातकाल को रोकने के छह महीने की समाप्ति के बाद तुरन्त प्रभाव से बंद कर दिए जाते हैं। इसी तरह, केंद्रीय संसद भी किसी भी राज्य के विषय पर कानून बना सकती है, यदि दो या दो से अधिक राज्यों की विधानसभाओं को संसद की आवश्यकता होती है।

तीन सूचियों के तहत चयनित कुछ विषयों को नीचे तालिका 5.1 में दर्शाया गया है।

तालिका 5.1: (कुछ चुने हुए विषय)

संघ सूची (100 विषय)	राज्य सूची (66 विषय)	समवर्ती सूची (52 विषय)
रक्षा	पुलिस	सिविल प्रक्रिया
विदेशी मामले	सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता	अपराधिक कानून और प्रक्रिया
बैंकिंग	शराब	शिक्षा
मुद्रा सिक्का	कृषि	विवाह
बीमा	मत्स्य	श्रम कल्याण

नौसेना और वायुसेना	कारागर	अनुबंध
सीबीआई	सिंचाई	आर्थिक और सामाजिक
युद्ध और शान्ति	भूमि	योजना
नागरिकता	बाजार और मेले	न्यास
प्रत्यर्पण	धन–उधार	दिवालियापान और दिवाला
रेलवे	भूमि राजस्व	वन
पोस्ट और टेलीग्राफ	राज्य लोक सेवाएँ	जंगली जानवरों और पक्षियों का संरक्षण
अंतर–राज्य व्यापार	व्यवसायों पर कर	जानवरों के प्रतिक्रूरता का विरोध
विदेशी ऋण	वाहनों पर कर	जनसंख्या और परिवार नियोजन
परमाणु ऊर्जा	जानवरों और नावों पर कर	.....

5.3.2 प्रशासनिक क्षेत्र

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 257, 258, 262 और 263 का सम्बन्ध केन्द्र राज्यों के बीच प्रशासनिक व्यवस्था को सुचारू रूप से कार्यान्वित करने से है।

अनुच्छेद 257 में कहा गया है कि राज्य अपनी कार्यपालिका शक्तियों का इस तरह उपयोग करेंगे ताकि संघ की कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग कोई रूकावट न आये और न ही कोई पक्षपात हो सके और राज्य को ऐसे निर्देश दे, जो उसके लिए आवश्यक हो।

अनुच्छेद 258 के अनुसार, राष्ट्रपति किसी भी मामले के संबंध में राज्यों (उनकी सहमति के साथ) को सषर्त या बिना शर्त कार्य सौंप सकते हैं, जिसे संघ की कार्यकारी शक्ति द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

अनुच्छेद 262 राष्ट्रपति को नदी जल के उपयोग, वितरण और नियंत्रण के संबध में राज्यों के बीच किसी भी विवाद के स्थगन के लिए कानून प्रदान करने का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 263 एक अंतरराज्य समिति की स्थापना से संबंधित है। ये सभी प्रावधान सरकार के दो स्तरों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध सुनिश्चित करते हैं। हालांकि, एक आपात स्थिति के दौरान, किसी भी मामले से संबंधित कार्यकारी शक्ति के उपयोग के लिए राज्य को दिशा–निर्देश देने की शक्ति केन्द्र के पास है।

5.3.3 वित्तीय क्षेत्र

एक संघीय व्यवस्था में यह महत्वपूर्ण होता है कि विधायी और कार्यकारी शक्तियों का विभाजन के साथ वित्तीय शक्तियों और संसाधनों का विभाजन भी होना चाहिए। संविधान का अनुच्छेद 264 से 300 वित्तीय संसाधनों के आवंटन का प्रावधान है।

1) केन्द्र सरकार के विशेष वित्तीय स्रोत

राजस्व के स्रोत, जो विशेषरूप से संघ के क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं वे संघ सूची में सम्मिलित हैं। व्यापार कर, मुद्रा, विदेशी मुद्रा, सीमा शुल्क और निर्यात शुल्क, कृषि आय के अलावा

अन्य आयकर कृषि भूमि के अलावा संपत्ति के संबंध में संपत्ति शुल्क, डाक और टेलीग्राम, रेलवे आदि सूची में आदि में आते हैं।

2) राज्य सरकारों के वित्तीय स्रोत

प्रतिव्यक्ति कर, कृषि भूमि उत्तराधिकार के संबंध में कर्तव्य, कृषि आय पर कर, भूमि राजस्व, भूमि और भवनों पर करों, उत्पादित या राज्यों में निर्मित वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क जैसे शराब, अफीम आदि; बिजली की खपर पर कर, समाचार पत्रों के अलावा अन्य सामानों की बिक्री पर लगने वाले कर, सड़क या अंतर्देषीय जलमार्गों द्वारा किए गए माल और यात्रियों पर कर, विलासिता पर करों और मनोरंजन कर करों– राज्यों के राजस्व के स्रोत हैं।

3) संघ द्वारा कर लगाया गया लेकिन राज्यों द्वारा एकत्रित और विनियोजित जाना

अनुच्छेद 268 में प्रावधान किया गया है कि कुछ राजस्व क्षेत्रों को संघ द्वारा लगाया जाएगा, लेकिन राज्यों द्वारा लगाया गया ओर विनियोजित किया जाएगा। ये कर इस प्रकार हैं:

- विनिमय बिल पर स्टाम्प शुल्क, चेक, प्रतिज्ञात्मक पत्र, आधार के बिल, ऋण पत्र, बीमा की नीतियाँ, षेयरों के हस्तांतरण आदि पर मुद्रक शुल्क।
- शराब और अफीम युक्त औशधीय और शौचालय की तैयारी पर उत्पाद शुल्क।

4) संघ द्वारा कर लगाना और एकत्र करना लेकिन राज्यों को सौंपना

संविधान का अनुच्छेद 269 उन कर्तव्यों और करों को प्रदान है, जिन्हें केन्द्र सरकार द्वारा लगाया और एकत्र किया जाएगा, लेकिन राज्यों को सौंपा जाएगा। इनमें संपत्ति के संबंध में संपत्ति शुल्क, रेलवे किराए और माल भाड़े पर कर, समाचार पत्रों की बिक्री। खरीद पर कर और सीमा कर सम्मिलित है।

उपरोक्त के अलावा अन्य करों का भी प्रावधान है, जो संघ द्वारा लगाया और वसूला जाता है लेकिन केन्द्र और राज्यों के बीच वितरित किया जाता है जैसे आय और उत्पाद शुल्क पर कर।

राज्यों को सहायता अनुदान का प्रावधान है। अनुच्छेद 275 और 282 में सषर्त और बिना शर्त अनुदान के लिए एक विस्तृत प्रणाली का उल्लेख है। संसद कानून का पालन करते हुए, अभावग्रस्त राज्यों को अनुदान दे सकती है। राज्य अपनी विशिष्ट परियोजनाओं के लिए उधार लेने के लिए अनुरोध भी कर सकते हैं।

अनुच्छेद 280 में वित्त आयोग को राष्ट्रपति द्वारा पाँच साल के अंतराल पर नियुक्त करने का प्रावधान दिया गया है। आयोग की जिम्मेदारी है कि वह राज्यों की आवश्यकताओं का मूल्यांकन कर सके और आवश्यकतानुसार सहायता के लिए सिफारिश भी करता है। यह संघ और राज्यों के बीच करों की आय के वितरण के लिए सिफारिशें करता है यह उन सिद्धान्तों का भी सुझाव देता है, जो राज्यों को अनुदान–सहायता देने के लिए आवश्यक होते हैं।

5.4 भारतीय संघवाद के कार्य

भारत में संघीय व्यवस्था के संबंध में बुनियादी संवैधानिक ढाँचे से गुजरने के बाद, इस व्यवस्था के वास्तविक काय्र का विश्लेषण करने का समय आ गया है जहाँ का संवैधानिक प्रावधानों का संबंध है इनके अनुसार शक्तियों का मुख्य झुकाव केन्द्र की ओर है। राज्य सूची

की तुलना में संघ सूची के पास लगभग दुगना कार्य है और समवर्ती सूची के मामले में केन्द्र को प्राथमिकता देकर प्रावधानों ने इसे और मजबूत कर दिया है। भारत में कुछ विद्वानों ने आग्रह किया है कि हमारे संविधान में एकात्मकता अपने वास्तविक कार्यों से काफी आगे निकल चुका है, जिसके लिए मुख्य कारक जिम्मेदार है ये कारक इस प्रकार है। केन्द्रीय अनुदान की विशाल वित्तीय शक्ति और केन्द्रीय अनुदान पर बढ़ती निर्भरता देश के सामाजिक–आर्थिक विकास को लाने के लिए केन्द्रीय योजना तंत्र की प्रभुत्वता इन दोनों प्रतिबन्धों का उद्देश्य एकरूपता, राष्ट्रीय शक्ति और तेजी से विकास करना है। केन्द्र का मजबूत होना भी काफी आवश्यक है ताकि सांप्रदायिकता, भाषवाद या आतंकवाद के अलगाववादी ताकतों से मिलकर सामंजस्य और राष्ट्रीय प्रगति को वाधित करने जैसी वाधाओं से लड़ा जा सके। पिछले सात दशकों के दौरान संघ और कुछ अन्य राज्यों के बीच संघर्ष के विभिन्न उदाहरण रहे हैं ओर ऐसी परिस्थितियाँ रही, जिन्होंने भारत में संघीय प्रणाली की विफलता के संकेत दिये, लेकिन इन सब गम्भीर आंदोलनों के वाबजूद यह आगे बढ़ रहा है। यह तंत्र काम कर रहा है और आगे बढ़ रहा है वास्तव में यह संघीय न होकर एक नए 'सहकारी संघवाद' की दिशा में आगे बढ़ रहा है।

सरकारिया आयोग की रिपोर्टः

संघ–राज्य संबंधों से संबंधित ज्वलंन मुद्दों पर विचार करने के लिए कई आयोगों/समितियों और प्रमुख हस्तियों ने समय–समय पर अपने विचार दिए है। 1983 में, केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच संबंध और शक्ति के संतुलन की जाँच करने और भारत के संविधान के भीतर परिवर्तन का सुझाव देने के लिए न्यायमूर्ति रंजीत सिंह सरकारिया की अध्यक्षता में तीन सदस्यीय आयोग नियुक्त किया गया था। आयोग ने वर्ष 1987 में अपनी रिर्पार्ट प्रस्तुत की, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि सवंधिान में मौलिक रूप से कुछ भी गलत नहीं है और इसमें कठोर परिवर्तन की आवश्यकता भी नहीं है। रिपोर्ट कहती है ''हमें पूर्ण तरह से एक मजबूत केन्द्र की आवश्यकता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि इसके बिना सब कुछ व्यवस्थित करना काफी मुष्किल है।'' लेकिन रिपोर्ट विकेन्द्रीकरण के महत्व को कम करती है और इसमें पूर्ण केन्द्रीकरण की अक्षमता के बारे में सावधानी भी सम्मिलित है, इसमें उल्लेख किया गया है कि 'भारत केवल केन्द्र नहीं है, बल्कि समान रूप से राज्य है' रिपोर्ट कुछ लेकिन महत्वपूर्ण सुझाव देती है ये सुझाव राज्यों के बीच विधायी, कार्यकारी और वित्तीय संबंधों को नियंत्रित करने वाले संविधान के कार्यात्मक पहलू से संरचनात्मक पहलू और विभिन्न सिफारिशों और सुझावों और सुधारों के लिए है।

आयोग ने अनुच्छेद 356 के विवादास्पद आयोग पर भी गौर किया, जो राज्यों में राष्ट्रपति के शासन से सम्बन्धित है। इसने इसे समाप्त करने की सिफारिश नहीं की गई बल्कि इसे संषोधित करने की माँग की। स्खलित राज्य को उचित चेतावनी देनी होती है और उसके बाद अनुच्छेद 356 का संयम से उपयोग किया जाना चाहिए। संसद द्वारा राष्ट्रपति की घोशण पर विचार किए जाने के पले राज्य विधानमंडल को भंग नहीं किया जाना चाहिए। मुख्य मंत्री की नियुक्ति पर सरकारिया आयोग ने वरीयता के क्रम को इंगित करते हुए चार–चरण सूत्र की सिफारिश की राज्यपाल को सबसे अधिक संख्या में विधानसभा सीटें जीतने वाले राजनीतिक दलों के चुनाव पूर्व गठबंधन के नेता को आमंत्रित करना चाहिए। दूसरे चरण की सिफारिश की गइ थी कि राज्यपाल को विधानसभा में सबसे बड़ी एकल पार्टी के नेता को आमंत्रित करना चाहिए, जो दूसरों के समर्थन से सरकार बनाने का दावा पेश करें।

आयोग ने यह भी सिफारिश की कि समवर्ती सूची में किसी विषय पर कानून बनाने से पहले केन्द्र को राज्यों से परामर्ष करना चाहिए। लेकिन कोई कानूनी बदलाव का सुझाव नहीं दिया गया है आयोग ने इस मामले स्वस्थ सम्मेलन की वृद्धि पर जोर दिया।

5.5 निष्कर्ष

इस इकाई में हमने अपने राष्ट्र की संघीय विशेषताओं के बारे में चर्चा की है, जैसा कि भारतीय संविधान द्वारा प्रस्तावित है। निस्संदेह, केन्द्र और राज्य सरकारों के विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय गतिविधियों के वर्गीकरण जैसे निर्धारित विशेषताएँ हैं। एक स्वतंत्र न्यायपालिका का लिखित संविधान और अपना एक अस्तित्व है। फिर भी, कई और एकात्मक विशेषताएँ हैं, जो हमारे लोकतंत्र को अर्ध–संघीय प्रकृति करती है। हमारे संविधान में 'संघ' शब्दी पूर्णतया अनुपस्थिति है। एकल नागरिकता, दोनों राज्यों और संघ के लिए एक संविधान, संसद का प्रभुत्व, उच्च नियुक्ति करने में केन्द्र की सर्वोच्चता आदि, केन्द्र की श्रेष्ठता के प्रति झुाव को दर्शाता है।

राष्ट्र की संप्रभुता के लिए आंतरिक शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है लेकिन तब जबकि राज्य संसदीय लोकतंत्र के जीवंत घटक के रूप में संघीय गुणों कार्य करें।

5.6 संदर्भ और अन्य उपयोगी पुस्तकें

Bash D.D., 1998, Introduction to the Constitution of India, Prentice Hall, New Delhi

Birch A.N., 1955, Finance and Social Legislation in Canada, Australia and United States, close gap Oxford University Press, London

Bombwall K.R., 1979, National Power and State Autonomy, Meenakshi Publications, Meerut

Shekar, Chander S., 1988, (ed.) Indian Federalism and Autonomy, B.R. Publishers, Place NA

Singh, Sahib & Swinder Singh, 2016, Indian Administration, New Academic, Jalandhar

इकाई 5(ए) विधायिका

प्रस्तावना

भारत ने एक लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया है। वास्तविकता में, भारत में लोकतांत्रिक संस्थान औपनिवेशिक काल से ही विकसित होने लगे थे। 1909, 1919, और 1935 के भारत सरकार के अधिनियमों में लोकतंत्र के प्रावधानों को स्थान मिला। स्वतंत्रता पश्चात्, संविधान सभा में विचार–विमर्श के साथ 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान लागू होने के साथ ही देश गणतंत्र बन गया। भारत ने संसदीय स्वरूप को अपनाया, जिसमें राष्ट्र राज्य ने संप्रभुता, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, व लोकतांत्रिक गणराज्य के सिद्धांतों का पालन किया।

संसदीय लोकतंत्र में, राष्ट्र की संप्रभुता को विधायिका (संसद) द्वारा समर्थित रखा जाता है। नए संविधानिक प्रावधानों के अनुसार एक नए संसद का निर्माण होने तक भारत में अनंतिम संसद के रूप में संविधान सभा जारी रही। पहली निर्वाचित संसद मई, 1952 में उस साल में हुए पहले आम चुनाव के बाद अस्तित्व में आई।

विधायिका एक सामान्य शब्द है[1], जिसमें संसद, कांग्रेस, नेशनल असेंबली जैसे नाम सम्मिलित होते हैं। विधायिका को अलग–अलग देशों में विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। उदाहरण के लिए जापान में इसे 'डाइट', स्पेन में 'कोर्टस', बांग्लादेश में 'जाति संघसद' के नामों से उल्लेखित किया जाता है। भारत में, संघ स्तर पर विधायिका को संसद कहा जाता है।

इस इकाई में आप भारतीय संदर्भ में संसद के महत्व और भूमिका से परिचित होंगे। प्रारम्भ में हम भारतीय शासन में संसद के महत्व के बारे में चर्चा करेंगे।

संसद का महत्व

लार्ड ब्रायस[2] (1921) ने अपनी कृति 'मॉडर्न डेमोक्रेसीज' में विधायिका के महत्व पर प्रकाश डाला है। उन्होंने पाया कि लोकतंत्र में विधानसभा सरकारी तंत्र का एक अनिवार्य भाग है। माइकल अमेलर ने कहा है कि ''एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में, संसद बुनियादी सिद्धान्तों को निर्धारित करती है, जिसे कार्यपालिका द्वारा केन्द्रीय सरकार के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए उपयोग में लाना होता है। साथ ही, न्यायपालिका को इन्हें सम्बन्ध के दायरे के रूप में उपयोग करना होता है।'' जैसा कि संदर्भित है, के.आर. नारायणन (1992), (भारत के पूर्व राष्ट्रपति) ने संसद और राज्य विधानसभा को सर्वोच्च संस्था के रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार ''संसद व विधान सभा भारत के राजनीतिक स्वरूप के प्रमुख तथा मुख्य शीर्ष हैं। संसद व विधान सभा लोकतंत्र में गणतंत्र के संस्थापकों द्वारा किए गए साहसिक परिक्षण के मूर्त रूप हैं।''

पहली निर्वाचित संसद मई, 1952 में अस्तित्व में आई। भारत में संसद ने वर्षों से अपने लिए एक उत्कृष्ट मंच बनाया है, जिससे देश के नागरिक एक ओर तो अपनी आकांक्षाओं को व्यक्त कर पाते हैं और दूसरी ओर अपनी शिकायतों का निवारण भी कर पाते हैं। यह नागरिकों का सर्वोच्च प्रतिनिधि निकाय है (कश्यप, 1988)। इसीलिए यह कहा जा सकता

[1] इस इकाई में हम विधायिका को संसद, निचला सदन, व्यवस्थापिका आदि नामों से उल्लेखित करेंगे।

[2] लॉर्ड ब्रायस ब्रिटिश शैक्षिक, विधि शास्त्री, इतिहासकार, व उदारवादी राजनेता थे।

है कि राज्य के तीन अंगों– व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, और न्यायपालिका– में व्यवस्थापिका ही है, जो अन्य दोनों अंगों की तुलना में अधिक महत्ता रखती है।

हमारे संविधान निर्माताओं ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 79 से 123 में संसदीय लोकतंत्र के काम करने का प्रावधान किया है। ये अनुच्छेद संसद की संरचना, संसद के सदस्यों की योग्यता, दोनों सदनों का कार्यकाल, उनके सत्र, सत्र विराम, और सत्र विघटन; उनके अधिकारियों और उनकी भूमिका और काम–काज के संचालन व विधायिका और वित्तीय प्रक्रियाओं के बारे में प्रावधान रखते हैं।

निम्नलिखित चर्चा में हम इन सभी प्रावधानों के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

संरचना

भारतीय संविधान एक द्विसदनीय संसद प्रदान करता है, जिसके कार्यकारी अध्यक्ष के रूप में भारत के राष्ट्रपति और संसद के दो सदन सम्मिलित है। पहला सदन लोक सभा है जिसे निचला सदन कहा जाता है, जबकि दूसरा सदन राज्य सभा है, जिसे उच्च सदन कहा जाता है।[3] क्योंकि सरकार संघीय प्रकृति की है, इस कारण हमारे संविधान निर्माता एकमत थे कि निम्न सदन में लोगों के अप्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व और उच्च सदन में संघीय इकाईयों अर्थात् राज्यों के प्रतिनिधित्व के बीच संतुलन प्राप्त करना है। इस तरह दो सदनों के होने पर तर्क न्यायसंगत है, एक सदन पूरे देश के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा संघीय इकाईयों का प्रतिनिधित्व करता है।

राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। राष्ट्रपति का चुनाव संसद के दोनों सदनों द्वारा किया जाता है और इस प्रकार इन्हें मुख्य कार्यकारी (Chief Executive) माना जाता है और सरकार के सभी कार्य इनके नाम पर किए जाते हैं।

अब हम राज्य सभा और लोकसभा की संरचना के बारे में चर्चा करेंगे।

राज्यसभा की संरचना

1. राज्य सभा के कुल सदस्यों की संख्या 250 है जिनमें से (क) 12 सदस्यों को राष्ट्रपति मनोनित करते हैं और (ख) षेश (238 सदस्य) राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रतिनिधि होते हैं। इनको अप्रत्यक्ष चुनाव (अनुच्छेद 80) की विधि द्वारा चुना जाता है।

2. 12 नामित सदस्यों को राष्ट्रपति द्वारा साहित्य, विज्ञान, कला, और सामाजिक सेवा में विशेष ज्ञान या व्यवहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से चुना जाता है। संविधान इस प्रकार प्रतिष्ठित व्यक्तियों को उच्च सदन में जगह देने के लिए नामांकन के सिद्धान्त को अपनाता है।

3. प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों को एकल हस्तांतरणीय वोट प्रणाली[4] के माध्यम से आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार संबंधित राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाता है।

4. केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रतिनिधियों को संसद द्वारा प्रस्तावित किए गए तरीकों के अनुसार चुना जाएगा। संसद यह निर्धारित करती है कि केन्द्र शासित प्रदेशों के राज्य सभा में प्रतिनिधियों का चुनाव एकल हस्तांतरणीय वोट प्रणाली के माध्यम से

[3] हम इस इकाई में लोक सभा और राज्य सभा जैसे शब्दों का प्रयोग करेंगे।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार सम्बन्धित प्रदेश के एक निर्वाचक मंडल के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया जाएगा।

राज्य सभा के संघीय प्रतिनिधित्व में अन्तर देखा जा सकता है, जैसे, नागालैण्ड से जहाँ केवल एक सदस्य है, वहीं उत्तर प्रदेश से 31 सदस्य हैं। ये हमारे देश की संघीय प्रकृति को दर्शाता है।

लोकसभा की संरचना

लोकसभा की संरचना परिवर्तनशील है। संविधान के अनुसार, इस सदन में सदस्य अधिकतम संख्या में होंगे।

1. इसमें 530 प्रतिनिधि राज्यों के लोगों द्वारा चुने जाएंगे। राज्य के लोगों द्वारा प्रतिनिधियों को वयस्क मताधिकार के आधार पर सीधे चुना जाएगा। प्रत्येक नागरिक, जो 18 वर्ष की आयु से कम नहीं है और जो गैर–निवासी, मंदबुद्धि, अपराधी, भ्रष्ट या अवैध मामलों में लिप्त नहीं है उसे वोट देने का अधिकार होता है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के अतिरिक्त किसी भी अल्पसंख्यक समुदाय के लिए सीटों का आरक्षण नहीं होगा। इस प्रकार, सदन के अधिकतर सदस्य सीधे चुने जाते हैं।
2. केन्द्र शासित प्रदेशों से 20 प्रतिनिधि सीधे चुने जाएंगे।
3. राष्ट्रपति द्वारा नामांकि आंग्ल भारतीय समुदाय के सदस्यों की संख्या अधिकतम 2 होती है। ऐसा तब होगा, जब राष्ट्रपति की राय में सदन में आंग्ल भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त रूप से नहीं हुआ हो।

लोकसभा में चुनाव कराने के उद्देश्य से पूरे राज्य को क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है। निर्वाचन क्षेत्रों को इस तरह से विभाजित किया जाता है कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की आबादी और उसके लिए आवांटित सीटों की संख्या के बीच का अनुपात बना रहे।

योग्यता

संसद के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ होना आवश्यक हैं:

1. व्यक्ति को भारत का नागरिक होना चाहिए।
2. राज्यसभा का सदस्य बनने के लिए उसकी आयु 30 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए; और लोकसभा का सदस्य बनने के लिए उसकी आयु 25 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।

संसद कानून द्वारा अतिरिक्त योग्यता निर्धारित कर सकती है।

किसी भी सदन के सदस्य के निम्न आधार पर अयोग्य घोषित किया जा सकता है, यदि वहः

1. भारत सरकार या किसी भी राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद ग्रहण करता है (संसद के कानून द्वारा छूट प्राप्त कार्यालयों को छोड़कर)।
2. अस्वस्थ दिमाग का हो और सक्षम न्यायालय द्वारा ऐसा घोषित भी कर दिया गया हो।
3. दिवालिया हो गया हो।
4. भारत का नागरिक नहीं हो या उसने स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर ली हो या किसी विदेशी शक्ति के प्रति निष्ठा या पालन की स्वीकृति के अधीन हो।

5. संसद के किसी भी कानून के अंतर्गत अयोग्य घोषित किया गया हो।

सदनों के कार्यकाल की अवधि

राज्य सभा स्थायी निकाय है और यह विघटन के अधीन नहीं है। प्रत्येक दूसरे वर्ष की समाप्ति पर इसके 1/3 सदस्य सेवानिवष्त हो जाते हैं। प्रत्येक तीसरे वर्ष की शुरूआत में इसके सदस्यों में से 1/3 को भरने के लिए एक चुनाव आयोजित किया जाता है। राज्य सभा आदेश 1952 (सदस्यों के कार्यकाल की अवधि) द्वारा सदस्यों के सेवानिवषति का आदेश प्रस्तावित किया जाता है।

दूसरी ओर, लोकसभा 5 साल की अवधि के लिए चुनी जाती है, लेकिन राष्ट्रपति द्वारा इसका कार्यकाल पूरा होने से पहले ही इसे भंग भी किया जा सकता है। साथ ही, आपातकाल (अनुच्छेद 352) के अंतर्गत लोकसभा की सामान्य कार्यकाल अवधि को संसद द्वारा पारित अधिनियम से विस्तारित भी किया जा सकता है। हालांकि, संविधान ने आपातकाल की अवधि के अंतर्गत संसद को अपनी शक्ति के विस्तार करने के लिए एक सीमा निर्धारित की हुई है। इसके अनुसार संसद के कार्यकाल की समय सीमा की अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती है और इसके अतिरिक्त, आपातकाल समाप्त हो जाने पर संसद के कार्यकाल को छह महीने की अवधि से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है।

सत्र

निम्न सदन को बुलाने, स्थगित करने, और भंग करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित होती है। संविधान के अनुसार, प्रत्येक सदन को छह महीने के अंतराल में राष्ट्रपति द्वारा बुलाया जाना आवश्यक होता है। यह छह महीने का अंतराल–एक सत्र में सदन की अंतिम बैठक और अगले सत्र की पहली बैठक के लिए नियुक्त तिथि के बीच का होता है। एक वर्ष में कम से कम दो बार संसद का सत्र होना चाहिए। एक सदन के स्थगन की तिथि और अगले सत्र में प्रारम्भ होने वाली तिथि के बीच छह महीने से अधिक का अन्तराल नहीं होना चाहिए।

इस संदर्भ में, संसद से संबधित कुछ प्रयुक्त शब्दों को समझना उचित होगा। संसद सत्र के अंतर्गत ही कामकाज का लेन–देन होता है। एक सत्र में विभिन्न महत्वपूर्ण मुद्दों पर कई दैनिक बैठकें होती हैं। स्थगन होने पर संसद के सत्र को समाप्त नहीं किया जाता है, बल्कि इसके काम–काज को विशिष्ट समय, घंटे, दिन या सप्ताह के लिए स्थगित किया जाता है। स्थगन द्वारा केवल एक सत्र का समापन होता है, जबकि विघटन द्वारा निम्न सदन का पूरा कार्यकाल समाप्त हो जाता है और इसके बाद एक नई लोकसभा के लिए चुनाव का आह्वान होता है।

गतिविधि 1

हमारे देश के संसदीय चुनावों पर अपना मत प्रकट कीजिए। (लागत, पूर्ण कार्यकाल की समाप्ति ना होना, महिलाओं का प्रतिनिधित्व, पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व आदि)

पीठासीन अधिकारी

प्रत्येक सदन के लिए एक पीठासीन अधिकारी होता है जैसा कि निम्न व्यक्त है :

स्पीकर (लोकसभा)

प्रत्येक सदन के अपने स्वयं के पीठासीन अधिकारी और सचिवीय कर्मचारी होते हैं। लोकसभा के पीठासीन अधिकारी के रूप में लोकसभा स्पीकर होता है। लोकसभा, अपनी पहली बैठक में, क्रमशः लोकसभा स्पीकर और डिप्टी स्पीकर के रूप में सदन में से दो सदस्यों का चयन करती है।

स्पीकर का मुख्य कार्य सत्रों की अध्यक्षता करना है। लोकसभा सत्र में स्पीकर के पास ही व्यवस्था बनाए रखने की अंतिम शक्ति होती है। स्पीकर ही सदन की 'कार्यवाही के नियमों' (Rules of Procedure) की अन्तिम रूप से व्याख्या कर सकता है। स्पीकर सदन की कार्यवाही सुचारू रूप से चलाने और सदन में शांति एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिए उत्तरदाई होता है। इस प्रक्रिया के लिए वह किसी भी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है।

गणपूर्ति (कोरम)[4] के अभाव में सदन को स्थगित करना या बैठक को स्थगित करना स्पीकर का कर्तव्य होता है, जब तक कि कोरम पूरा नहीं हो जाता।

स्पीकर के पास वोट देने का अधिकार नहीं होता है, लेकिन यदि दोनों पक्षों के वोट बराबर होते हैं, तो वह निर्णायक वोट डालता है। पहले उदाहरण में वोट न डालने की बाध्यता इसीलिए है, जिससे स्पीकर की स्थिति को निश्पक्ष रखा जा सके; और फिर वोट देने का अधिकार इसीलिए है, जिससे बीच में आये गतिरोध को हल किया जा सके।

लोकसभा की अध्यक्षता करने के अतिरिक्त, स्पीकर के पास कुछ शक्तियाँ भी होती हैं:

1. स्पीकर संसद के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेषन की अध्यक्षता करता है।
2. जब कोई वित्त विधेयक निम्न सदन से उच्च सदन में भेजा जाता है, तब स्पीकर को विधेयक के वित्त विधेयक होने के प्रमाण पत्र का पुष्टि करनी होती है। इसके साथ ही, विधेयक के पारित होने की आगामी प्रक्रिया संचालित हो जाती है।

लोक सभा स्पीकर या डिप्टी स्पीकर का कार्यकाल लोकसभा के साथ ही समाप्त हो जाता है। हालांकि, उनका कार्यकाल इससे पहले भी समाप्त हो सकता है, अगर वह सदन के सदस्य नहीं बने रहते या उन्होंने त्याग पत्र दे दिया हो या उन्हें सदन के सभी सदस्यों के बहुमत से पारित एक प्रस्ताव द्वारा पद से हटा दिया गया हो। हालांकि, इस तरह के प्रस्ताव को 14 दिन के पूर्व नोटिस के बिना नहीं रखा जा सकता है। जब तक कि स्पीकर के निश्कासन की प्रक्रिया विचाराधीन होती है, तब तक वह सदन की अध्यक्षता नहीं कर सकता है। हालांकि, सदन की कार्यवाही में बोलने और भाग लेने का उसका अधिकार बरकरार रहता है।

जब स्पीकर का पद खाली हो जाता है या स्पीकर सदन के बैठक से अनुपस्थित रहता है, तब डिप्टी–स्पीकर सदन की अध्यक्षता करता है। यह तब तक हो सकता है जब तक उनके स्वयं के निराकरण का प्रस्ताव विचाराधीन न हो।

सभापति

राज्यसभा में सभापति पीठासीन अधिकारी होता है। जबकि लोकसभा में, अध्यक्ष को सदस्यों द्वारा चुना जाता है, राज्यसभा के सभापति का पद पदेन होता है। भारत के उपराष्ट्रपति राज्यसभा के पदेन सभापति होते हैं और वह सदन की अध्यक्षता करने का अधिकार रखते

[4] किसी भी संगठन में कार्यवाही करने के लिए सदस्यों की न्यूनतम संख्या।

हैं, जब तक कि वह राष्ट्रपति के कार्यालय में आकस्मिक अवकाश के कारण भारत के राष्ट्रपति के रूप में कार्य नहीं करते हैं। यदि ऐसा करना होता है, तब उपसभापति पीठासीन अधिकारी का कर्तव्य निभाते हैं। सभापति का कार्यकाल उपराष्ट्रपति के कार्यकाल के समकालीन होता है।

राज्यसभा में सभापति का कार्य लोकसभा के स्पीकर के कार्य के समान ही होता है। केवल इसके कि लोसभा के स्पीकर के पास वित्त विधेयक को प्रमाणित करने या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करने की कुछ विशेष शक्तियाँ होती हैं।

संसद की भूमिका

भारतीय संसद का गठन सर्वोच्च विधायी निकाय के रूप में किया गया है। यह एक बहुआयामी संस्था है, जो विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं का निर्वहन करती है। इन भूमिकाओं की व्याख्या निम्न प्रकार की गयी है:

विधायी भूमिका

संसद का प्राथमिक कार्य कानून निर्माण है। ये कानून बनाने की प्रक्रिया संसद को सर्वोपरि निकाय बनाती है।

संसद का निचला सदन धन विधेयक के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धन विधेयक केवल लोकसभा में ही पहले प्रस्तुत किया जा सकता है, राज्य सभा में इसे पहले प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। निचले सदन में विधेयक पास होने के बाद, उसे राज्यसभा में विचार के लिए भेजा जाता है। राज्य सभा को विधेयक पर कार्रवाई करने के लिए चौदह दिन का समय दिया जाता है। राज्यसभा विधेयक को पारित, संषोधित, या अस्वीकार भी कर सकता है। यदि विधेयक राज्यसभा द्वारा पारित हो जाता है, तब इसे राष्ट्रपति के पास उनकी अनुमति के लिए भेजा जाता है। यदि इसमें संशोधन किया जाना है, तब यह लोकसभा में पुनर्विचार के लिए वापस भेजा जाता है और फिर, साधारण बहुमत से मतदान होता है, जिसके बाद इसे राष्ट्रपति को अनुमति के लिए भेजा जाता है।

साधारण बिल के मामलों में, दोनों सदनों के पास समान अधिकार हैं। साधारण विधेयक लोकसभा या राज्यसभा दोनों में से किसी में भी पेश किए जा सकते हैं। राज्यसभा, लोकसभा द्वारा पारित विधेयक को संषोधित या अस्वीकार कर सकती है। यदि लोकसभा राज्यसभा की कार्रवाई से असहमत होती है, तब यह मामला दोनों सदनों की संयुक्त बैठक के सामने प्रस्तुत किया जाता है और फिर उसे साधारण बहुमत से पारित कर दिया जाता है। संयुक्त बैठक में पारित विधेयक राष्ट्रपति को उनकी अनुमति के लिए भेजा जाता है। संवैधानिक संशोधन के संबंध में भी, दोनों सदनों के पास समान अधिकार होता है। संविधान में तब तक संशोधन नहीं किया जा सकता, जब तक राज्यसभा भी इस तरह के संशोधनों को करने के लिए सहमत न हो।

कार्यपालिका पर नियंत्रण

विधायिका की एक महत्वपूर्ण भूमिका कार्यपालिका का नियंत्रण है। संविधान के अनुसार, मंत्रीपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है।[3] निचले सदन को सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों से संबंधित जानकारी लेने का अधिकार के साथ यह देखने का भी अधिकार है कि मंत्री परिषद् ने अपने दायित्वों के अनुरूप कार्य किया है या नहीं। विधायिका का कार्यपालिका पर नियंत्रण उसे सभी सार्वजनिक हितों के मामलों में

प्रेरित व प्रशासनिक रूप से प्रात्साहित करना है। यह कार्यपालिका को सार्वजनिक हित में काम करने के लिए निरन्तर सतर्क बनाए रखता है।

ऐसी कई प्रक्रियाएँ हैं, जिनके द्वारा निम्न सदन कार्यपालिका पर नियंत्रण रखता है। राष्ट्रपति के अभिभाषण, बजटीय मामलों, और अन्य गतियाँ पर धन्यवाद प्रस्ताव, संसदीय नियंत्रण के कुछ पद्धतियाँ हैं। मंत्रियों के लिए संसदीय प्रष्न, स्थगन गतियाँ, और कॉल अटेन्षन (call attention) आधारित गतियाँ, वे प्रक्रियाऐं हैं, जो सदस्यों को विशिष्ट शिकायतों या मुद्दों पर सरकार का ध्यान आकर्शित करके उन पर सरकार की अनुक्रिया को प्राप्त करने में सक्षम बनाती हैं। साथ ही, निचले सदन को सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित करने का अधिकार भी देती हैं (यह अधिकार राज्य सभा के पास नहीं है)। इसके अतिरिक्त, अल्प अवधि चर्चाओं, निजी सदस्यों के प्रस्तावों, संवैधानिक कानून के संशोधन के लिए निवेदन, तथा विभागों व सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा रिपोर्टिंग प्रशासनिक कमियों पर दृष्टि रखते हैं।

कार्यपालिका की मनमानी को रोकने के लिए विधायिका के पास कुछ महत्वपूर्ण नियंत्रण शक्तियाँ होती हैं, जैसे कि, सार्वजनिक धन पर संसद का नियंत्रण, कर लगाने और संषोधि ात करने का अधिकार, और आपूर्ति और अनुदान के लिए मतदान आदि। संविधान के प्रावध ाानों के अनुसार, संसद की अनुमति के बिना न तो कोई कर लगाया जा सकता है और न ही संचित निधि से कोई भी खर्च किया जा सकता है।

प्रतिनिधि भूमिका

संसद एक ऐसा निकाय है, जो जनता का प्रतिनिधित्व करता है। इसके सदस्य देश के प्रत्येक हिस्से से होते हैं और वे विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। संसद एक मंच का कार्य करती है, जहाँ विभिन्न दलों और विभिन्न हितों के सदस्य एक साझा मंच के तहत एक साथ आते हैं। यह वह जगह है, जहाँ चर्चा और बातचीत से सहमति-जन्य राजनीति होती है।

एक मंच होने के नाते भी जनता की जरूरतों और आकांक्षाओं और यहाँ तक कि उनकी चिंताओं और परेषानियों को व्यक्त करता है। यह जनता को एक मंच प्रदान करता है, जिससे वे अपनी समस्याओं और उस होने वाली कार्रवाई को व्यक्त कर सकते हैं। कश्यप के शब्दों में ''संसद लोगों की बदलती आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करता है। यह न केवल एक सूक्ष्म जगत और लोगों का दर्पण है, साथ में, यह उनकी मनोदशा और नाड़ी का मापदंड भी है।''

संसद, लोगों की एक संस्था के रूप में और उसके सदस्य लोगों के प्रतिनिधियों के रूप में, ने हर समय जनसमर्थन किया है। संसद सभी के लिए एक निकाय है, जो जनहित के मामलों में उत्साहपूर्वक अनुक्रिया देता है, और सदन में सार्वजनिक महत्व के मामलों को उठाता है। इसने देश के लोगों की शिकायतों के लिये एक लोकपाल की भूमिका निभाई है।

राज्यसभा की विशेष शक्तियाँ

संविधान ने कुछ विशेष शक्तियाँ राज्यसभा को ही सौंपी है, जो उसके अकेले अस्तित्व को उजागर करती हैं कि वह राज्यों की परिषद है। अनुच्छेद 249 के अंतर्गत संविधान राज्य सभा को किसी भी ऐसे मामले में प्रस्ताव पारित करने का अधिकार देता है, जो राष्ट्र हित के परिप्रेक्ष्य में राज्य सूची के अंतर्गत आते हैं। इसी तरह, अनुच्छेद 312 के तहत, राज्य सभा

को एक अखिल भारतीय सेवा की स्थापना के बारे में दो–तिहाई बहुमत द्वारा समर्पित एक प्रस्ताव द्वारा निर्णय लेने का अधिकार है। लोकसभा इस सम्बन्ध में बाद में आती है। जब राज्यसभा इन सभी मामलों में संबंधित कानूनों को पारित कर चुकी होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसद के दोनों सदनों का अलग रूप से गठन किया जाता है। दोनों सदनों के पास कुछ समान अथवा विशेष आधार पर कुछ शक्तियाँ होती हैं, फिर भी ये समन्वित सदन होते हैं। कुछ मामलों में दोनों सदनों को समान अधिकार प्राप्त हैं, जैसे राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाना, उपराष्ट्रपति को हटाना, संवैधानिक संशोधनों, और उच्च न्यायालय व सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया में। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति द्वारा जारी किया गया प्रत्येक अध्यादेश, आपातकाल की घोषणा, और किसी भी राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा दोनों सदनों के समक्ष रखी जानी हैं।

हालांकि, दोनों सदनों को विशेष क्षेत्र में आने वाली विशेष शक्तियाँ प्राप्त हैं। मंत्रिपरिषद वित्तीय शक्तियों का उपयोग करती है और विधायिका के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है, उच्च सदन भी कुछ शक्तियों का उपयोग करता है, जिनका उल्लेख अनुच्छेद 249 और 312 में किया गया है।[6]

संसदीय प्रक्रिया

जैसा कि पहले उल्लेखित किया जा चुका है कि हमारे पास सरकार का संसदीय स्वरूप है और नीति–निर्माण का अधिकार विधायी निकाय अर्थात् संसद को है। निम्न सदन, अर्थात् लोक सभा में चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं, जो कार्यपालिका का गठन करते हैं। कार्यपालिका में मंत्रिपरिषद होता है, जिसमें राज्य मंत्री और कैबिनेट मंत्री होते हैं। कैबिनेट मंत्री अलग–अलग विभाग रखते हैं।[7] मंत्रिपरिषद की अध्यक्षता प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है। कैबिनेट मंत्रियों का चयन उस राजनीतिक दल के सदस्यों में से किया जाता है, जिसकी संख्या संसद में बहुमत में होती है[5] अर्थात् जो सत्ताधारी पार्टी होती है। मंत्रीमण्डल तभी तक सत्ता में रह पाता है, जब तक कि उसे संसद के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो ।

विधेयकों (धन विधेयक के अतिरिक्त) के पारित होने से संबंधित संसदीय प्रक्रिया में विभिन्न चरण होते हैं, जिनकी चर्चा निम्नानुसार है:

1. **प्रस्तुतीकरण:** वित्तीय विधेयकों के अतिरिक्त अन्य विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किए जा सकते हैं और राष्ट्रपति की अनुमति के लिए प्रस्तुत होने से पहले ये विधेयक दोनों सदनों में पारित होने आवश्यक हैं। विधेयक को एक मंत्री या एक निजी सदस्य[6] द्वारा पेश किया जा सकता है।

2. **प्रस्तुतिकरण के बाद मोषन[7]:** एक विधेयक प्रस्तुत किए जाने के बाद, विधेयक का प्रभारी सदस्य विधेयक के संबंध में निम्नलिखित में से कोई भी एक गतिविधि को करता है:

   - इसको मान लिया जाना चाहिए।
   - यह एक चयनित समिति को भेजा जाना चाहिए।

[5] सामूहिक रूप से उत्तरदायी का अर्थ कि सारा मंत्रिपरिषद साथ तैंरगे और साथ डूबेंगे।

[6] अनुच्छेद 249 संसद को राज्य सूची से सम्बन्धित मामले में कानून बनाने का अधिकार देती है, जो राष्ट्रीय हित से जुड़ा हो। अनुच्छेद 312 एक अखिल भारतीय सेवा की स्थापना से सम्बन्धित है।

[7] कार्यकारिणी का गठन सत्ताधारी दल द्वारा किया जाता है।

- इसका प्रचलन जनमत को प्राप्त करने के लिए किया जाना चाहिए।

3. **चयन समिति द्वारा रिपोर्ट :** यदि विधेयक को चयन समिति के पास भेजा जाता है, तब सदन की चयन समिति विधेयक के प्रावधानों पर विचार करती है। विधेयक पर विचार करने के बाद यह अपनी रिपोर्ट सदन को सौंप देती है। रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, विधेयक के अलग–अलग भाग चर्चा के लिए अनावष्त होते हैं व संशोधन के लिए स्वीकार्य होते हैं।

4. **दूसरे सदन में पारित होना :** जब विधेयक एक सदन में पारित हो जाता है, तब उसे दूसरे सदन में भेजा जाता है। जब विधेयक दूसरे सदन में प्राप्त होता है, तब उन सभी चरणों से होकर जाता है, जिन चरणों से यह पहले सदन में होकर गया था। दूसरा सदन बिल पर निम्नलिखित में से कोई भी कार्यवाही कर सकता है।

   - यह विधेयक को अस्वीकार कर सकता है। ऐसे मामलों में राष्ट्रपति द्वारा संयुक्त बैठक का प्रावधान किया जाता है।

   - यह संशोधन के साथ विधेयक को पारित कर सकता है। ऐसे मामले में, विधेयक को मूल सदन को लौटा दिया जाता है। यदि मूल सदन विधेयक में उसी रूप में संशोधन कर देता है, तब विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेजा जाता है। यदि, मूल सदन दूसरे सदन द्वारा किए गए संशोधनों से सहमत नहीं होता है और दोनों सदनों के बीच असहमति होती है, तब राष्ट्रपति गतिरोध को सुलझाने के लिए संयुक्त बैठक बुलाते हैं।

5. **राष्ट्रपति की अनुमति :** जब दोनों सदनों द्वारा विधेयक पारित हो जाता है, तब इसे राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। राष्ट्रपति के अनुमति के साथ, विधेयक एक अधिनियम बन जाता है। राष्ट्रपति दोनों सदनों के पास पुनर्विचार के लिए भी विधेयक भेज सकता है संसद पुनर्विचार करके विधेयक में संशोधन ला सकती है। यदि संसद विधेयक पर पुनर्विचार नहीं करता और उसे पुनः राष्ट्रपति के पास उसी रूप में बिना बदलाव किये भेज देता है, तब इस प्रकार, दूसरी बार भेजे गए विधेयक को राष्ट्रपति स्वीकृति देता है।

वित्त पर नियंत्रण

वित्तीय प्रणाली में दो शाखाएँ होती हैं– राजस्व और व्यय

1. राजस्व के संबंध में, अनुच्छेद 265 में निर्दिष्ट किया गया है कि कानून के अधिकार के बिना कोई कर ना ही लगाया जाएगा और ना ही एकत्र किया जाएगा। फलस्वरूप, कार्यपालिका बिना विधायी स्वीकृति के कोई कर नहीं लगा सकती है। यदि विधायी अधिकार के बिना कोई कर लगाया जाता है, तब पीड़ित व्यक्ति न्यायालय से राहत प्राप्त कर सकता है।

2. व्यय के संबंध में, भारत की संचित निधि ही भारत सरकार के राजस्व का भंडार है। साथ ही, इसी में से सरकार द्वारा उठाए गए सभी ऋणों का भुगतान भी किया जाता है। संविधान में प्रावधान है कि भारत की संचित निधि से तब तक कोई धनराशि नहीं निकाली जा सकती है, जब तक कानून के अनुसार ना हो।

विभिन्न मंत्रालयों और विभागों द्वारा किये गए व्यय के प्रभाविकता व कुशलता पर नियन्त्रण के लिए संसद की निम्नलिखित समितियाँ हैं। प्रारम्भ करते हैं प्राक्कलन समिति से।

प्राक्कलन समिति (Estimates Committee)

सरकार नीतियों को तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। साथ ही, इन नीतियों को लागू करने के लिए अपनी माँगों को भी प्रस्तुत करती है। संसद ऐसी मांगों को अस्वीकार कर सकता है, जब तक कि वह सरकार की नीति और जिम्मेदारी पर सोच विचार नहीं कर लेता है। विभिन्न मदों पर, जो खर्च पहले से ही प्रस्तावित है, उन खर्चों में कटौती करने का सुझाव देना भी संसद के लिए उचित नहीं है, विषेशकर जब समय की कमी के कारण बिना कोई बहस के माँगों को सदन में वोट के लिए रखा गया हो। सरकार द्वारा प्रस्तावित व्यय की जाँच प्राक्कलन समिति द्वारा की जाती है। वार्षिक वित्तीय विवरण अर्थात् बजट निम्न सदन के समक्ष प्रस्तुत किये जाने के बाद, यह समिति अनुमानों की जाँच करती है।

हालांकि प्राक्कलन समिति की रिपोर्ट पर सदन में कोई बहस नहीं होती है। लेकिन यह समिति साल भर में -अर्थव्यवस्था और दक्षता- इन दो पैमानों पर सरकारी व्यय की जाँच करती है और सदन के सदस्यों के समक्ष अपने विचार रखती है। आने वाले साल में माँग को पूरा करने के लिए किए जाने वाले सरकारी व्यय पर यह समिति महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती है।

लोक लेखा समिति (Public Account Committee)

संसद द्वारा स्वीकृत व्यय को विनियोग अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार खर्च किया जाना है। नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (सी.एण्ड ए.जी.) सार्वजनिक व्यय का संरक्षक है और यह उसका कर्तव्य है कि वह यह देखें कि संसद के अधिकार के बिना एक भी पैसा व्यय नहीं किया जाता है। नियंत्रक और महालेखा परीक्षक, केन्द्र सरकार के खातों से संबंधित ऑडिट रिपोर्ट को राष्ट्रपति को सौंपता है, जिसे राष्ट्रपति संसद के सदनों के समक्ष रखता है।

नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट संसद के समक्ष रखे जाने के बाद, इसकी जाँच लोक लेखा समिति (पी.ए.सी.) द्वारा की जाती है। हालांकि, यह संसद के सदस्यों की एक समिति है। इसमें निचले सदन के 15 सदस्य और उच्च सदन के 7 सदस्य होते हैं। समिति का अध्यक्ष आमतौर पर लोकसभा का सदस्य होता है, जो सत्ताधारी दल का सदस्य नहीं होता है।

जब लोक लेखा समिति, भारत सरकार के विनियोग खातों और सी. एण्ड ए.जी. की रिपोर्ट की जाँच करती है, तब यह इसका दायित्व होता है कि वह निम्न बिन्दूओं के आधार पर स्वयं को संतुष्ट करे।

1. यह कि खातों में दिखाया गया धन, जिसको कानूनी रूप से खर्च किया गया हो, वास्तव में उपलब्ध थे और वह धन उन्हीं सेवाओं या उद्देश्यों के लिए प्रयोग किये गये, जिसके लिए उन्हें रखा गया था।

2. यह कि खर्च किया गया धन उस प्राधिकरण के अनुरूप है, जो प्राधिकरण इसे नियंत्रित करता है।

3. यह कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा निर्धारित नियमों के अंतर्गत ही इस धन को पुनः प्रयोग किया गया हो।

संक्षेप में, नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट को समिति विस्तार से जाँच करती है और अपनी रिपोर्ट को लोक सभा को सौंपती है, जिससे जिन अनियमितताओं पर ध्यान

आकर्शित किया गया है उन पर चर्चा की जा सके तथा इसके लिए प्रभावी कदम उठाए जा सकें।

गतिविधि 2

हाल के वर्षों में संसद की समितियों द्वारा लाई गई अनियमितताओं पर आप सरकार की चिंता का कैसे मूल्यांकन करेंगे?

निष्कर्ष

संसदीय लोकतंत्र में विधायिका के माध्यम से लोगों की संप्रभुता बरकार रखी जाती है। भारत में, केन्द्र स्तर पर विधायिका को संसद कहा जाता है। भारतीय संविधान एक द्विसदनीय संसद का प्रावधान करता है, जिसमें राष्ट्रपति होते हैं और साथ ही, दो सदन भी होते हैं। जिन्हें राज्यसभा और लोकसभा के रूप में जाना जाता है। संसद के प्रत्येक सदन के अपने पीठासीन अधिकारी और सचिवीय कर्मचारी होते हैं। संसद विधायी अंग के रूप में वित्त पर नियंत्रण रखने के विभिन्न कार्य करती है, जैसे, सरकार को निचले सदन के प्रति जबावदेही बनाती है, और विधेयकों के पारित होने को सुनिश्चित करती है।

संदर्भ लेख

1) Ameller Michael, 1966, Parliaments: A Comparative Study on the Structure and Functioning of Representative institutions in Fifty-five Countries, Cassell, london.

2) Basu Durga Das, 2009, Introduction to the Constitution of India (20th Edition), Lexis Nexis Butterworths, Wadhwa

3) Granville Austin, 2001, The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation, Oxford University Press, New Delhi

4) Indian Administration (BA2-PA2), 2013, Dr. B. R. Ambedkar Open University, Hyderabad

5) Kashyap Subhash, 2015, Our Parliament, National Book Trust, New Delhi.

6) Laxmikanth M., 2013, Public Administration, McGraw Hill Education (India) Pvt. Ltd, New Delhi

इकाई 5(बी) कार्यपालिका

प्रस्तावना

संसदीय लोकतंत्र उस प्रकार की सरकार के लिए होता है, जिन्हें लोग अपने मताधिकार द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि द्वारा करते हैं। इसके लिए दो उससे अधिक राजनीतिक दलों का होना अनिवार्य है। इस प्रकार की संसदीय मॉडल में दो कार्यपालिकाएं होती हैं। राष्ट्रपति राज्य का संवैधानिक शीर्ष होता है, जबकि प्रधानमंत्री व उनका मंत्रीमण्डल वास्तविक कार्यपालिका होता है। प्रधानमंत्री व उनका मंत्रीमण्डल संसद में बहुमत प्राप्त दल में से चुने जाते हैं और संसद के सभी कार्यों और नीतियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। वास्तविक कार्यपालिका तब तक संसद में रहती है, जब कि उसे संसद का विश्वास प्राप्त हो।

केन्द्रीय कार्यपालिका का शीर्ष भारत का राष्ट्रपति होता है। संविधान के अनुच्छेद 53 राष्ट्रपति को औपचारिक रूप से कार्यपालिका शक्तियों से निहित करता है, जो उनके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या उनके अधीनस्थ अधिकारी द्वारा निश्पादित किया जाता है। व्यावाहारिक रूप में, उनकी सहायता के लिए एक मंत्रीपरिषद होता है, जिसका मुखिया प्रधानमंत्री होता है। अतः राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री व मंत्रिपरिषद केन्द्र में राजनीतिक कार्यपालिका होते हैं।

इस इकाई में, हम केन्द्र स्तर पर राजनीतिक कार्यपालिका का विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे। प्रारम्भ करेंगे भारत के राष्ट्रपति सेः

राष्ट्रपति

राष्ट्रपति राज्य का संवैधानिक मुखिया होता है और इस कारण वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। हालांकि सरकार के सारे कार्य उनके नाम पर किए जाते हैं, परन्तु वह निर्धारक, निर्देशक व निर्णयाक नहीं होता है। संविधान का अनुच्छेद 52 उल्लेखित करता है, ''भारत का एक राष्ट्रपति होगा।'' और अनुच्छेद 53(1) के अंतर्गत उनमें केन्द्र की कार्यपालिका शक्तियाँ निहित हैं। इन शक्तियों का निष्पादन उसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा संविधान अनुसार किया जाता है। वास्तव में, उसे प्रधानमंत्री व मंत्रीपरिषद द्वारा सहायता दी जाती है।

चुनाव

राष्ट्रपति का पद देश का सर्वोच्च कार्यपालिका पद है। संविधान के अनुच्छेद 58 में इस पद के लिए योग्यताओं को उल्लेखित किया है। योग्यताएं निम्नलिखित हैंः

1. वह भारत का नागरिक है।
2. उनकी आयु 35 वर्ष की है।
3. संसद के निचले सदन के चुनाव के लिए योग्य है।
4. केन्द्र या राज्य सरकारों के अधीनस्थ कोई भी लाभ का पद नहीं ग्रहण किया हुआ हो।

राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चयनित होता है, अर्थात् समानुपाति प्रति प्रणाली के द्वारा एक निर्वाचक मण्डल (इलेक्ट्रोरल कॉलेज) द्वारा किया जाता है। इस निर्वाचन मण्डल में सदन के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, राज्यों के विधानसभा के निर्वाचित सदस्य, तथा केन्द्र शासित प्रदेशों के विधानसभा के निर्वाचित सदस्य होते हैं।

कार्यकाल व महाभियोग प्रक्रिया

राष्ट्रपति का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। जिस तिथि वह पद को ग्रहण करता है, वह केवल एक और बार के लिए ही पुनः निर्वाचित हो सकता है। राष्ट्रपति को अपना पद 5 वर्ष अवधि से पूर्व भी निम्न कारणों से छोड़ना पड़ सकता है।

1. स्वयं के हाथों से लिखा गया उप–राष्ट्रपति को संबोधित त्यागपत्र।
2. संविधान की अवहेलना के लिए महाभियोग प्रक्रिया द्वारा।

महाभियोग को संसद में अर्द्धन्यायिक विधि के रूप में माना गया है। दोनों सदनों में से एक सदन राष्ट्रपति के विरूद्ध संविधान की अवहेलना का आरोप लगा कर दूसरे सदन में उसे प्रेषित करता है। दूसरा सदन आरोपों की स्वयं द्वारा जाँच कर सकता है या इसकी जाँच करवा भी सकता है। आरोपों को लगाने के लिए यह आवश्यक है कि नोटिस देने के 14 दिन पश्चात् एक रेजॅयूल्यूषॅन, जो सदन के एक चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किया गया है और उसे उसी सदन के दो तिहाई बहुमत से पारित किया गया हो।

राष्ट्रपति के पास जाँच पड़ताल में उपस्थित रहने का अधिकार होता है। जाँच पड़ताल के परिणाम के अनुसार यदि राष्ट्रपति को हटाने के पक्ष में प्रस्ताव उस सदन (जिस सदन में आरोप उल्लेखित किया गया था) के दो तिहाई बहुमत द्वारा पारित किया जाता है, तब उस तिथि से राष्ट्रपति को हटाया जाता है।

जब तक एक नया राष्ट्रपति निर्वाचित नहीं होता है, उप–राष्ट्रपति कार्यालय का प्रभारी होता है।

अब हम राष्ट्रपति की शक्तियों के बारे में विचार–विमर्श करेंगे।

शक्तियाँ

राष्ट्रपति की शक्तियाँ निम्नानुसार हैं:

1. कार्यापालिका शक्तियाँ

कार्यापालिका शक्तियों का मुख्य अर्थ कार्यापालिका द्वारा व्यवस्थापिका के बनाये गये नियमों का कार्यान्वयन है। इन शक्तियों का अर्थ सरकार के कार्य या राज्य के प्रशासनिक मामलों को क्रियान्वित करना है।

कार्यापालिका शक्तियाँ निम्नलिखित हैं:

1. सारी कार्यपालिका क्रियाविधि राष्ट्रपति के नाम से कार्यान्वित होंगी।
2. वे ऐसे नियम बना सकते हैं, जिसके अंतर्गत जो आदेश उनके नाम पर किए जाते हैं, इस नियम द्वारा प्रमाणित किए जाते हैं।
3. वे प्रधानमंत्री और मंत्रियों को नियुक्त करते हैं, और वे इनकी इच्छा पर कार्यालय में रहते हैं।
4. वे महान्यायवादी (अटार्नी जनरल ऑफ इण्डिया), महालेखा व लेखा परिक्षक, मुख्य चुनाव आयुक्त, और अन्य चुनाव आयुक्त, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्य, राज्यपाल, और वित्त आयोग अध्यक्ष व सदस्य नियुक्त करते हैं। जो उनकी इच्छानुसार कार्यालय में रहते हैं।

5. वे प्रधानमंत्री से केन्द्र स्तर के किसी भी मामले के बारे में सूचना मांग सकते हैं।

6. वे आयोग की नियुक्ति कर सकते हैं, जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, तथा अन्य निचली जातियों की वास्तविक स्थितियों की जाँच करे।

7. अन्तर्राज्यीय परिषदों की नियुक्ति करते हैं, जिससे केन्द्र व राज्य तथा अन्तर्राज्य संबंध प्रोत्साहित हो सकें।

8. केन्द्र शासित प्रदेशों को स्वयं द्वारा नियुक्त प्रशासकों द्वारा शासित करना।

9. वे किसी भी क्षेत्र को अनुसूचित घोषित कर सकते हैं, तथा ऐसे अनुसूचित क्षेत्रों और आदिवासी क्षेत्रों पर शासन करने की शक्ति रखते हैं।

2. विधायी शक्तियाँ

भारत का राष्ट्रपति निम्नलिखित विधायी शक्तियों का उपयोग प्रधानमंत्री व मंत्रीपरिषद की सलाह पर करते हैं।

1. वे संसद को बुला सकते हैं, स्थगित कर सकते हैं, और निचले सदन को समाप्त कर सकते हैं। वह संसद के दोनों सदनों की एक संयुक्त बैठक बुला सकते हैं, जो लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा संचालित की जाएगी।

2. वे प्रत्येक आम चुनाव पश्चात् संसद के प्रथम सत्र तथा प्रत्येक वर्ष संसद के प्रथम सत्र को संबोधित करते हैं।

3. वे किसी भी विधेयक (बिल) के लंबित होने के संबंध में संसद के सदनों को इस संदर्भ में सूचना भेज सकते हैं।

4. वे लोकसभा के किसी भी सदस्य को सदन की कार्यवाहियों का संचालन के लिए नियुक्त कर सकते हैं, जब अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का कार्यालय रिक्त हो। ऐसे ही, वे राज्यसभा के किसी भी सदस्य को सदन की कार्यवाहियों का संचालन करने के लिए नियुक्त कर सकते हैं, जब अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का कार्यालय रिक्त हो।

5. वे साहित्य, विज्ञान, कला, समाज सेवा के क्षेत्रों में से 12 प्रतिष्ठित व्यक्तियों का नामांकन राज्यसभा के लिए करते हैं।

6. इसी प्रकार, वे आंग्ल–भारतीय समुदाय (Anglo-Indian Community) के दो सदस्यों को लोकसभा के लिए नामांकित कर सकते हैं, यदि इस समुदाय का प्रतिनिधित्व लोकसभा में नहीं हुआ है।

7. वे चुनाव आयोग के विचार–विमर्श के साथ संसद के किसी भी सदस्य को अयोग्य करने के बारे में निर्णय कर सकते हैं।

8. कुछ एक विधेयक जैसे भारत की संचित निधि में से व्यय या राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन या नए राज्य की स्थापना से सम्बन्धित होते हैं, को संसद में प्रस्तुतीकरण के लिए राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति लेनी होती है।

9. जब एक बिल, जो संसद द्वारा पारित किया गया है, को राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है, तब वहः

   क) विधेयक को अपना हस्ताक्षर दे सकता है; या

ख) विधेयक को अपना हस्ताक्षर देने से मना कर सकता है; या

ग) विधेयक को संसद में पुनः सोच–विचार करने के लिए भेज सकता है। (यदि विधेयक वित्त विधेयक नहीं है।)

यदि, संसद विधेयक को संशोधन समेत/रहित पुनः राष्ट्रपति को भेजता है, तब राष्ट्रपति को उस पर हस्ताक्षर करने ही होते हैं। यहाँ इस बात को नोट किया जाए कि राष्ट्रपति के पास संविधान संशोधन विधेयक पर कोई निशेधाधिकार नहीं होता है। 1971 के 24 वें संशोधन अधिनियम के अंतर्गत इस बात को स्पष्ट किया गया कि राष्ट्रपति संविधान संशोधन विधेयक पर हस्ताक्षर देने के लिए बाध्य है।

10. यदि राज्यपाल राज्य विधान सभा द्वारा पारित विधेयक को राष्ट्रपति के सहमति के लिए रखता है, तब राष्ट्रपतिः

क) विधेयक को अपना हस्ताक्षर दे सकता है; या

ख) विधेयक को अपना हस्ताक्षर देने से मना कर सकता है; या

ग) राज्यपाल को वे निर्देश दे सकते हैं कि विधेयक को विधानसभा के पुनः सोच–विचार करने के लिए लौटाया जाए। यहाँ इस बात को नोट किया जाए कि विधानसभा द्वारा पुनः प्रेषित विधेयक पर राष्ट्रपति हस्ताक्षर देने के लिए बाध्य नहीं है। अतः राष्ट्रपति राज्य विधेयकों पर असीम निशेधाधिकार रखते हैं।

11. वे अध्यादेश जारी कर सकते हैं, जब संसद सत्र में नहीं होती है। संसद के पुनः बैठक के छः सप्ताह के भीतर ही अध्यादेश का अनुमोदन होना आवश्यक है। राष्ट्रपति किसी भी समय अध्यादेश को वापस भी ले सकते हैं।

12. वे महालेखा परिक्षक, संघ लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग, व अन्य को संसद के सदनों के सम्मुख उनकी रिपोर्ट रखने के लिए बुला सकते हैं।

13. वे केन्द्र शासित प्रदेशों के शासन सम्बन्धित नियम बना सकतें हैं।

3. वित्तिय अधिकार

1. उनकी अनुमति से ही वित्त विधेयक संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं।

2. उनकी अनुषंसा से ही अनुदान की माँग की जा सकती है।

3. उनके द्वारा किसी भी अनदेखा व्यय के लिए संचित निधि से अग्रिम दिया जाता है।

4. ये प्रत्येक पाँच वर्षों में केन्द्र व राज्यों के बीच करों के वितरण के लिए वित्त आयोग का गठन करते हैं।

4. न्यायिक अधिकार

1. वे सर्वोच्च व उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश व न्यायाधीशों को नियुक्त करते हैं।

2. वे किसी भी व्यक्ति को दिए गए दण्डादेश या सज़ा को क्षमा, स्थगित, या कम कर सकते हैं या राहत प्रदान कर सकते हैंः

क) जहाँ दण्डादेश या सज़ा फौजी न्यायालय द्वारा दी गयी हो।

ख) जहाँ केन्द्र के कार्यपालिका शक्तियों के अंतर्गत आने वाले मामलों के प्रति अपराध किया गया हो।

ग) जहाँ मृत्युदण्ड दिया गया हो।

राष्ट्रपति तीन प्रकार की आपातकालीन स्थितियों की घोषणा कर सकते हैं।

1. राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352)
2. राज्य आपातकाल (अनुच्छेद 356 एवं 365)
3. वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360)

1. राष्ट्रीय आपातकाल

अनुच्छेछ 352 के अंतर्गत राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा मंत्रीपरिषद के लिखित अनुरोध पर कर सकता है। इस आपातकाल की घोषणा को संसद के दोनों सदनों द्वारा एक माह के भीतर ही अनुमोदित किया जाना आवश्यक है। यदि यह अनुमोदित हो जाता है, तब आपातकाल छह माह तक जारी रहेगा। इसे प्रत्येक छह माह के आगे संसद के अनुमोदन द्वारा बढ़ाया जा सकता है। राष्ट्रीय आपातकाल तीन बार घोषित किए गए हैं– 1962, 1971, 1975।

ऐसे आपातकाल में, राष्ट्रपति निम्नलिखित शक्तियाँ अर्जित कर लेते हैं:

1. वे किसी भी राज्य को उसके कार्यापालिका शक्तियों के निवर्हन के सम्बन्ध में निर्देश दे सकते हैं।
2. वे केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तिय संसाधनों के वितरण को परिवर्तित कर सकते हैं।
3. 'जीवन के अधिकार व वैयक्तिक स्वतंत्रता' (प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार) (अनुच्छेद 21), और 'अपराधों के लिए दोशसिद्धि के संबंध में संरक्षण का अधिकार' को कभी भी निलंबित नहीं किया जा सकता है। अन्य छः स्वतंत्रता के अधिकार (अनुच्छेद 19) को निलंबित किया जा सकता है, यदि बाह्य आक्रमण हो।

संसद राष्ट्रीय आपातकाल में कुछ शक्तियाँ स्वयं के पास रखता है:

1. यह राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बना सकता है। ऐसे कानून आपातकाल के समाप्त होने छः माह के बाहर वैध नहीं होते हैं।
2. यह लोकसभा तथा विधानसभा का सामान्य कार्यकाल (5 वर्ष) को एक साल के लिए बढ़ा सकता है। इस प्रकार की बढ़ती आपातकाल के समापत छः माह के बाहर जारी नहीं रह सकते हैं।

2. राज्य आपात काल

राज्यपाल द्वारा प्रेषित किए गए राज्य से सम्बन्धित रिपोर्ट या अन्य स्रोतों से जानकारी कि राज्य का शासन संविधान के प्रावधानों के अनरूप नहीं है और राष्ट्रपति इन तथ्यों से आवश्वस्त हो, तब सम्बन्धित राज्य में अनुच्छेद 356 के अंतर्गत आपातकाल घोषित कर सकते हैं। अनुच्छेद 356 के अंतर्गत यदि कोई राज्य केन्द्र सरकार के निर्देशों के अनुसार कार्य नहीं करते हैं, तब आपातकाल घोषित किया जा सकता है। आपातकाल का अनुमोदन संसद द्वारा दो महिने के भीतर अनुमोदित होना चाहिए और 6 माह के अनुमोदन से इसे 3 वर्षों तक बढ़ाया जा सकता है।

जब राष्ट्रपति शासन राज्य में लागू होता है, तब राष्ट्रपति राज्य के मंत्रीमण्डल और मुख्यमंत्री को बरखास्त कर सकता है। ऐसी स्थिति में राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की ओर से राज्य प्रशासन की गतिविधियों को कार्यान्वित करता है।

राज्य के मुख्य सचिव या सलाहकारों से संसद ऐसे में, राज्य के विधेयक व बजट को पारित करती है। हालाँकि, राज्य के उच्च न्यायालय के संवैधानिक स्थिति, शक्तियों व कार्यों में कोई प्रभाव नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रपति सम्बन्धित राज्य के उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं।

3. वित्तीय आपातकाल

अनुच्छेद 360 के अंतर्गत वित्तीय आपातकाल की घोषणा राष्ट्रपति कर सकते हैं, यदि वे इस बात से संतुष्ट हैं कि देश की या उसके किसी भाग की वित्तीय स्थिति संकट में है। यह घोषणा संसद द्वारा दो महिने के भीतर साधारण बहुमत से अनुमोदित होनी चाहिए। राष्ट्रपति राज्य को वित्तीय औचित्य का पालन करने के लिए निर्देश दे सकता है। वह वेतन व भत्तों में कटौती भी कर सकता है, चाहे वह कोई विशेष वर्ग या सभी का हो। ये कटौतियाँ सभी केन्द्रीय स्तरों पर लागू होती है, जिसमें सर्वोच्च व उच्च न्यायालयों के न्यायधीश भी होते हैं। वह राज्य विधान सभा द्वारा पारित वित्त विधेयक व अन्य वित्तीय विधेयकों को उसके स्वयं के सोच–विचार के लिए अलग रखने का आदेश दे सकता है।

वित्तीय आपातकाल कभी भी नहीं घोषित किया गया है।

6. राजनयिक शक्तियाँ

राजनयिक शक्तियाँ को बाहर विदेशी मामलों के समरूप माना गया है, जो केन्द्र किसी भी विदेशी देश के साथ सम्बन्ध में लाता है। अंतरराष्ट्रीय संधियाँ और समझौता राष्ट्रपति की ओर से निर्णायक होते हैं। इनका संसद द्वारा अनुमोदन आवश्यक हैं। वे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत का प्रतिनिधित्व करता है तथा राजनयिकों पर जैसे उच्चायुक्त व राजदूतों को भेजते व स्वीकार करते हैं।

7. सैन्य शक्तियाँ

वह सैन्य बल का प्रधान सेनापति होता है। इस कारण वह थल, जल व वायु सेनाओं के अध्यक्षों को नियुक्त करता है। वह संसद के अनुमोदन पश्चात् युद्ध की घोषणा कर सकता है और शांति का समझौता भी कर सकता है।

आने वाले खण्डों में हम भार के प्रधानमंत्री पर चर्चा करेंगे।

प्रधानमंत्री

भारतीय संसदीय लोकतंत्र नामित व वास्तविक कार्यपालिका का प्रावधान करती है, ये क्रमशः राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री होते हैं। वास्तविक कार्यपालिका प्रधानमंत्री व मंत्रिमण्डल होते है। अनुच्छेद 74, 75 और 78 मोटे रूप से राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री के सम्बन्ध को संचालित करते हैं। अनुच्छेद 74 प्रधामंत्री द्वारा राष्ट्रपति को सलाह व सहायता देने के कार्य से सम्बन्धित है।

अनुच्छेद 75(1) ये प्रावधान करता है कि प्रधानमंत्री राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होंगे तथा उनकी सलाह पर अन्य मंत्री राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होंगे। अनुच्छेद 75(2) सभी मंत्री राष्ट्रपति की इच्छा पर कार्यालय में बने रहेंगे। अनुच्छेद 78 प्रधानमंत्री पर

यह मानता है कि वे राष्ट्रपति को केन्द्र के मामलों के प्रशासन सम्बन्धित मंत्रिमण्डल के सभी निर्णयों से अवगत करायेंगे। (भविष्य में लाए जाने विधायी और प्रस्ताव भी)

प्रधानमंत्री बहुमत दल का नेता होने के कारण, मंत्रिमण्डल का मुखिया होता है। वे संसद का नेता भी होता है। वे राष्ट्र और मंत्रिमण्डल के बी संचार का माध्यम होते हैं। वह सभी विदेशी नीतियों के सम्बन्ध में प्रवक्ता होते हैं। वह मंत्रियों के लिए विभागों का वितरण करता है और इन विभागों का अदल–बदल भी कर सकता है। वह किसी भी मंत्रि से त्यागपत्र भी देने को कह सकता है।

प्रधानमंत्री व्यय व कार्य में शक्ति व प्रभाव का उपयोग करता है। वह सरकार में प्रमुख होता है। मंत्रिपरिषद उसके चारों ओर बना हुआ होता है। ग्लैस्टोन (पूर्व यूके के प्रधानमंत्री) ने प्रधानमंत्री को मेहराब का मुख्य शिला माना है। आईवर जेनिक्स (ब्रिटिश वकील) ने प्रधानमंत्री को सूरज माना है, जिसके चारों ओर ग्रह घूमते हैं। पीटर जी.रीचर्ड प्रधानमंत्री को 'बराबरों में प्रथम' मानते हैं। रामसे मयूर (ब्रिटिश इतिहासकार व विचारक) के अनुसार मंत्रिपरिषद परिचालक चक्र है और प्रधानमंत्री उसका परिचालक है।

प्रधानमंत्री कार्यालय

प्रधानमंत्री कार्यालय प्रधानमंत्री को सचीविय सहायता प्रदान करता है। प्रिंसिपल सचिव इसका प्रशासनिक प्रधान है। 1947 अगस्त में इसकी स्थापना हुई, जिसे उस समय प्रधानमंत्री सचिवालय कहा जाता था। 1977 पश्चात् इसे प्रधानमंत्री कार्यालय कहा जाने लग। इसकी स्थापना प्रधानमंत्री को उनके काम–काज करने के सभी प्रकार की सहायता के लिए की गई थी।

संगठन

संगठनात्मक पदसोपान निम्नांकित हैः

1. **प्रधान सचिवः** यह प्रधानमंत्री कार्यालय का शीर्षस्थ होता है, सभी सरकारी फाइलों के साथ सम्बन्ध रखता है। इन्हे प्रधानमंत्री द्वारा दिए गए विभिन्न मंत्रालयों के मामलों को भी देखता है।
2. **अतिरिक्त सचिवः** ये मंत्रालयों के कार्मिक व नीतिगत मामलों को देखते हैं, जो प्रधानमंत्री द्वारा इन्हें देखने के लिए सौंपे जाते हैं।
3. **संयुक्त सचिव (I):** ये गृह मामलों एक कानून व न्याय को देखते हैं।
4. **संयुक्त सचिव (II):** ये प्रधानमंत्री कार्यालय और सतह परिवहर, संचार, रेलवेस, के प्रशासनिक मामलों व नगर विमानन मंत्रालयों को देखते हैं।
5. **संयुक्त सचिव (III):** विदेशी मंत्रालय, रक्षा मंत्रालय व परमाणु ऊर्जा।
6. **निदेशक (I):** विशेष कार्य अधिकारी होते हैं, जो ग्रामीण विकास व नागरिक आपूर्ति को देखते हैं।
7. **निदेशक (II):** गृह मामलों को देखते हैं।
8. **निदेशक (III):** प्रधानमंत्री द्वारा दिए गए कार्यों को देखते हैं।
9. **निदेशक (IV):** उत्तर–पूर्वी राज्यों से सम्बन्धित मामलों प्रधानमंत्री कार्यालय में जो भी कार्य वितरण होता है, वह प्रधानमंत्री के स्वविवेक पर होता है।

कार्य

प्रधानमंत्री कार्यालय का क्षेत्राधिकार उन सभी विषयों और कार्यवाहियों को कवर करता है, जो अन्य किसी विभाग को नहीं दिए गए हों, ये कार्यः

1. कार्य नियम से सम्बन्धित सभी निर्देश, जो प्रधानमंत्री के पास आते हैं।
2. यह प्रधानमंत्री को स्वयं के उत्तरदायित्वों को निपटाने में सहायता करते हैं। यह केन्द्रीय मंत्रालयों व राज्य सरकारों से सम्बन्ध रखता है।
3. प्रधानमंत्री कार्यालय से सम्बन्धित जन संपर्क के मामलों को .....
4. प्रधानमंत्री को प्रस्तुत किए गए हो, ऐसे केसों का मूल्यांकन करने में सहायता, जिसे कार्यवाही के लिए किए गए हों।
5. प्रधानमंत्री की पत्र–व्यवहार को संभालता है।

प्रधानमंत्री का बढ़ता हुआ महत्व

इस कार्यालय को बनाने का मुख्य उद्देश्य सभी रोजमर्रा के कार्यवाहियों को निपटाया था, जिससे प्रधानमंत्री के पास अति महत्वपूर्ण नीति निर्णयों के लिए समय उपलब्ध हो। वर्तमान समय में ये प्रधानमंत्री की एक विचारक मण्डली हो गई है। प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद का प्रधान होता है, इस कारण प्रधानमंत्री कार्यालय की निकटता अवरोक्त से भी बढ़ गई है। उदाहरण के लिए, विदेश नीति विदेश मंत्रालय तथा प्रधानमंत्री कार्यालय द्वारा संयुक्त रूप से निर्धारित की जाती है।

हम जब प्रधानमंत्री की भूमिका के सम्बन्ध में वर्णन कर रहे हैं, हम पाते हैं कि प्रधानमंत्री कार्यालय का आज के रूप में विकसित होना उसका विभिन्न प्रधानमंत्री के आय काम करना था। पंडित नेहरू के समय में ये कायालय सीमित था। उनके समय मंत्रियों पर अधिक विश्वास था।

श्री लालबहादुर शास्त्री, जो पंडित नेहरू के बाद प्रधानमंत्री बने, ने प्रधानमंत्री कार्यालय में एक शक्तिशाली सचिवालय की स्थापना का पहला कदम उठाया। उनके द्वारा श्री. एल.के. झा की प्रधान सचिव के पद पर नियुक्ति ने प्रधानमंत्री कार्यालय को अत्यन्त रूप से प्रभावशाली बनाया। यह प्रवृति श्रीमती इंदिरा गाँधी के शासन और सृदृढ़ हो गई।

श्री पी.एन. हक्सर ने जब प्रधानमंत्री कार्यालय में कार्यभार संभाला, तब प्रधानमंत्री सचिवालय एक कार्यपालिका शक्ति बन गया। घरेलु व विदेश नीतियाँ यहीं पर आकार लेने लगी और धीरे–धीरे इसने अत्यधिक अधिकार को ग्रहण कर लिया। 1975–1977 के आपातकाल समय में इसने और भी अधिकार प्राप्त कर लिए। यह अधिकार का केन्द्र बन गया कि सभी केन्द्रीय मंत्रालयों, विभागों व कार्यकारी एजेंसियों इसके आदेशों की पालना करते थे। प्रधानमंत्री कार्यालय सचिवालय एक राष्ट्रीय नीति बनाने की इकाई बन गई और मंत्रिपरिषद सचिवालय इसकी नीतियों को लागू करने की इकाई बन गई।

जनता पार्टी के शासन काल में प्रधानमंत्री कार्यालय के पास विद्यमान शक्तियों को छिन्न–भिन्न कर दिया गया और यह सचिवालय के प्रकृति में काम करने लगी। प्रधानमंत्री कार्यालय सचिवालय से नीति बनाने वाले इकाईयाँ वापिस ले ली गई। परन्तु यू.पी.ए. के शासनकाल की सचिवालय अवधि में, नीति बनाने की शक्ति को फिर से सचिवालय बहाल कर दिया गया। एनडीए सरकार में यथास्थिति थी।

अतः प्रधानमंत्री कार्यालय जैसे जैसे नीति निर्माण मंत्रिपरिषद की जगह ले लेगा, यह एक 'मिनी केबिनेट' के रूप में प्रतीत होने लगा।

मंत्रिमण्डल

मंत्रिमण्डल में मंत्रिपरिषद राज्य मंत्री और डिप्टी मंत्रीगण होते हैं। उप–खण्ड । को अनुच्छेद 75 में जोड़ा गया, जिसके अंतर्गत प्रावधान किया गया कि मंत्रिमण्डल में मंत्रियों की प्रधानमंत्री समेत कुल संख्या, निचले सदन के कुल सदस्यों की संख्या के 15ः से ज्यादा नहीं होगी, जो जनवरी 2004 से लागू किया गया।

मंत्रियों का चुनाव प्रधानमंत्री का विशेषाधिकार होता है। संविधान के अंतर्गत संसदीय सदस्य ही मंत्रिमण्डल का सदस्य हो सकता है। प्रधानमंत्री ऐसे व्यक्ति को भी ले सकता है, जो संसदीय सदस्य न हो, हालांकि ऐसे केस में ऐसे व्यक्ति को संसदीय सीटें ग्रहण के छः महीने के भीतर चुनाव लड़कर जीतनी होती हैः

प्रधानमंत्री, जब मंत्रियों का चुनता है, तब वे निम्नांकित बातों को ध्यान देते हैः क) भौगोलिक प्रतिनिधित्व

ख) सदस्य का राजनीतिक आधार

ग) चुनावकर्त्ताओं का सामाजिक मिश्रण

घ) व्यक्तिगत सामर्थ्य व योग्यता

ङ) निष्ठा के लिए पुरस्कार

च) पिछले वर्गों का प्रतिनिधित्व

छ) राज्यों का जनसंख्या अनुरूप पर्याप्त प्रतिनिधित्व

ज) सदस्य का भूतपूर्व मंत्री होने का निर्वहन

प्रधानमंत्री शीर्ष स्थान पर होता है। मंत्रिपरिषद मंत्री उनके बाद दूसरे श्रेणी के होता है, जिनको मंत्रालय नियत किए जाते हैं। कभी, केबिनेट मंत्री के बजाए, प्रधानमंत्री किसी भी राज्य मंत्री को मंत्रालय का स्वतन्त्र प्रभार दे सकता है। डिप्टी मंत्री तीसरे श्रेणी में होते हैं और वे कई प्रकार के कार्यों को देखते हैं। हालांकि यह आवश्यक नहीं कि डिप्टी मंत्री हो। संसदीय सचिव भी होते हैं, जो मंत्री मण्डल को सहायता प्रदान करते हैं।

सम्पूर्ण मंत्रीमण्डल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करता है। ये सभी साथ–साथ ही तैरते और डूबते हैं। यदि अविश्वास प्रस्ताव पारित होता है, तब सम्पूर्ण सरकार को त्यागपत्र देना पड़ता है।

मंत्रिपरिषद की भूमिका

मंत्रिपरिषद निम्नांकित भूमिकाएं निभाता हैः

- **प्रमुख नीति निर्माणक**

मंत्रिपरिषद सरकार की प्रमुख नीति निर्माण इकाई है। ये ऐसे क्षेत्रों को देखती है, जिनमें नयी नीति या संशोधन की आवश्यकता है। इस ओर पहल विभाग या मंत्रालय का मंत्री करता है, जो उस का प्रभारी होता है। प्रस्तावित नई नीति के प्रावधानों पर विस्तृतपूर्वक चर्चा सम्बन्धित मंत्रालय/विभाग करता है और उसके सुनिश्चित होने के बाद उसे मंत्रिपरिषद के सम्मुख अनुमोदन हेतु रखता है।

- **प्रमुख विधायी इकाई**

संसद विधायी प्रणाली का एक अभिन्न अंग है। संसदीय संसद कानून बनाने का विधायी कार्य मंत्रिपरिषद का कार्य होता है। मंत्रिपरिषद ही सभी विधेयकों को अंतिम रूप देता है। यह विधायी कार्यसूची को संसदीय सत्र के प्रारम्भ के होते ही तैयार करता है और विधेयकों जिनको संसद में प्रेषित करना है, पर निर्णय लेता है। यह संसद के प्रथम सत्र में राष्ट्रपति द्वारा उदघाटन भाषण को भी तैयार करता है। राष्ट्रपति सदन को बुलाना, स्थगित करना, व समाप्त करना मंत्रिपरिषद (प्रधानमंत्री के साथ) के सलाह पर लेता है।

सभी अध्यादेश, जो राष्ट्रपति द्वारा लागू किये जाते हैं, मंत्रिपरिषद द्वारा ही बनाए जाते हैं। अतः हम देखते हैं कि मंत्रिपरिषद न केवल नीतियों के कार्यान्वयन में बल्कि सभी विधायी मामलों में नेतृत्व प्रदान करता है।

सलाहकारी निकाय

मंत्रिपरिषद राष्ट्र के लिए एक सलाहकारी निकाय है। मंत्रिपरिषद की सलाह राष्ट्रपति द्वारा विधेयकों पर हस्ताक्षर करने के सम्बन्ध में बाध्य है। यह सभी नीतिगत मामलों में एक मात्र निर्णायक निकाय है, और ये निर्णयों से राष्ट्रपति को अनुमति हेतु अवगत कराता है।

समन्वयकारी निकाय

यह सभी मंत्रालयों/विभागों के बीच एक सौहार्दपूर्ण व समन्वयकारी पर्यावरण के लिए एक समन्वयकारी निकाय है।

मुख्य कार्यकारी निकाय

प्रत्येक केबिनेट मंत्री स्वयं के विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष है। प्रधान सहायक के रूप में सचिव होता है, जो विभाग का प्रशासनिक अध्यक्ष होता है। ये विभाग की नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायी होता है। हालांकि, मंत्री रोजमर्रा के मामलों में विभाग के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता है, परन्तु सचिव को मंत्री को सभी प्रमुख मामलों से अवगत रखना होता है, क्योंकि अंतिम उत्तरदायित्व मंत्री का होता है।

- **विदेशी और सुरक्षा नीतियों का समन्वय**

विदेशी सम्बन्ध, राजनयिकों का स्वागत, राजनयिकों की नियुक्ति, और नए राज्यों को मान्यता/अमान्यता सभी मंत्रिपरिषद की अनुमति से होता है। संधियाँ तय की जाती हैं और हस्ताक्षरित की जाती है कि इनकी सूचना संसद को भेज दी हैं। मंत्रिपरिषद, राष्ट्रपति व मंत्रियों के विदेशी यात्राओं पर भी नियन्त्रण रखता है।

सुरक्षा मंत्री सम्पूर्ण रक्षा बल के संरचना के लिए उत्तरदाई होता है। ये थल, वायु, व जल सेनाओं के मुख्य नियुक्तियाँ करते हैं। सुरक्षा मंत्रालय, मंत्री परिषद के साथ सलाह मषवरा से युद्ध की घोषणा, सेना का संघटन, और युद्ध विराम करता है।

- **संकट प्रबन्धक**

सभी प्रकार के आपातकाल की घोषणा मंत्रिपरिषद की सिफारिश पर होती है।

गतिविधि

भारत को गणतंत्र बनाने वाले आधारों पर प्रकाश डालिए।

सारांश

संसदीय मॉडल की मूल विशिष्टता द्वैत कार्यपालिका है। राष्ट्रपति देश का संवैधानिक प्रमुख होता है और प्रधानमंत्री व उनकी मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका होती है। वास्तविक कार्यपालिका ऑफिस में तब तक रहती है, जब तक उसे व्यवस्थापिका का विश्वास प्राप्त होता है। प्रधानमंत्री कार्यालय प्रधानमंत्री को सचिवीय सहायता प्रदान करता है।

प्रधान सचिव प्रधानमंत्री कार्यालय का शीर्षस्थ होता है। इस कार्यालय की भूमिका विभिन्न प्रधान सचिव के साथ भिन्न–भिन्न रही है। इस इकाई में मंत्रिमण्डल का विवरण दिया गया है और मंत्रिपरिषद की केन्द्र सरकार में भूमिका को भी बताया गया है।

संदर्भ ग्रंथ व अन्य लेख

1) Arora Ramesh K. and Rajni Goyal, 2003, Indian Public Administration, (2nd revised edition) Wishwa Prakashan, New Delhi

2) Basu Durga Das, 2009, Introduction to the Constitution of India (20th Edition), Lexis Nexis Butterworths, Wadhwa

3) Granville, Austin, 2001, The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation, Oxford University Press, New Delhi

4) Indian Administration, 2013, Dr. B. R. Ambedkar Open University, Hyderabad

5) Indian Administration, BPAE-102, 2005, School of Social Sciences, IGNOU, New Delhi

6) M. Laxmikanth, 2013, Public Administration, McGraw Hill Education (India) Pvt. Ltd, New Delhi

7) Richards, G. Peter,1970, Parliament and Consicence, Allen and Urwin, Great Britain

इकाई 5 (सी) : न्यायपालिका

प्रस्तावना

संसदीय लोकतंत्र और संघवाद के अंतर्गत, न्यायपालिका देश के शासन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। न्यायपालिका, जिसका गठन समाज को न्याय देने के लिए हुआ है, राज्य के तीन अंगों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।[1] न्याय, किसी भी राज्य के लिए एक तर्कसंगत आवश्यकता है, न्याय की उम्मीद करना और अन्याय के प्रति असहिष्णु होना मानव स्वभाव का एक भाग है। न्याय हर किसी पर लागू होता है, जिससे समाज की मूल व्यवस्था को बनाये रखा जा सके।

न्यायपालिका, शासन का एक अभिन्न अंग है। एक कुशल और स्वतन्त्र न्यायपालिका से निश्चित रूप से समाज की भलाई होती है। एक ओर भारतीय संविधान न्यायपालिका को विधायी और प्रशासनिक कार्यों की न्यायिक समीक्षा का अधिकार प्रदान करती है और दूसरी ओर इसे भारत के नागरिकों को दी जाने वाले मौलिक अधिकारों के अमल का कार्य भी प्रदान करती है। भारत के संविधान निर्माताओं ने समेकिक व स्वतंत्र न्यायपालिका की संकल्पना की थी, जिसमें शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है तथा कार्यपालिका और विधायिका के नियंत्रण से भी मुक्त है।

इस इकाई में हम भारत में प्रचलित न्यायिक प्रणाली पर चर्चा करेंगे। आरम्भ में, हम देश की न्यायपालिका द्वारा निभाई गई भूमिका और कार्यों पर चर्चा करेंगे।

भारत में न्यायपालिका

भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने एक न्यायिक प्रणाली बनाई जो भारत के संघीय सिद्धान्त पर आधारित थी, जिसे भारत का संघीय न्यायालय कहा गया। यह न्यायालय 1950 तक भारत का सर्वोच्च न्यायालय बना रहा जब तक वर्तमान संविधान के अंतर्गत भारत में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना हुई।

भारत के संविधान में कई प्रावधानों का समावेश है, जो न्यायपालिका की संरचना, कार्यों, और शक्तियों से संबंधित हैं। इसने सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में एकल एकीकृत न्याय प्रणाली की व्यवस्था की। इसके अंतर्गत हमारे देश में तीन स्तरीय न्यायपालिका प्रणाली है। सबसे ऊपर भारत का सर्वोच्च न्यायालय, राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में उच्च न्यायालय; और स्थानीय स्तर पर अधीनस्थ न्यायालय और जिला न्यायालय हैं। संविधान में भारत के सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों से संबंधित विशिष्ठ प्रावधान उल्लेखित किए गए हैं, जबकि दूसरी ओर अधीनस्थ न्यायपालिका को राज्यों के अधिकार क्षेत्र में छोड़ दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, संविधान ने निम्नलिखित प्रावधानों का समायोजन भी किया है, जिससे एक स्वतंत्र, निश्पक्ष, और सक्षम न्यायपालिका को बनाए रखा जा सके।

1. अधिषासी (collegium) मंडल द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति
2. कार्यकाल की सुरक्षा का प्रावधान, जिसके अंतर्गत एक बार नियुक्त होने के बाद, न्यायधीश 65 और 62 साल तक कार्यकाल में रह सकते हैं (क्रमशः सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय)।

[1] दो अन्य अंग विधान सभा और कार्यपालिका हैं।

3. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों को सेवानिवर्षत्ति के बाद किसी भी कानूनी अदालत में वकालत करने का अधिकार नहीं है।
4. प्रथम श्रेणी के वेतन और अन्य भत्तों और विशेषाधिकारों का भुगतान।
5. न्यायाधीशों द्वारा निश्पादित कार्य और निर्णय, जो उनके अधिकारिक क्षेत्र में आते हैं, किसी अन्य कानूनी अदालत के न्याय से प्रतिरक्षित रहेगें।
6. सर्वोच्च न्यायालय को अपनी संस्थापन होना और उस पर पूर्ण नियंत्रण रखने का अधि ाकार प्राप्त हैं

न्यायपालिका आमतौर पर संवैधानिक लोकतंत्रों में निम्नलिखित कार्य करती हैः

1. संविधान निर्माताओं की इच्छाओं का सम्मान करते हुए संविधान की व्याख्या करना।
2. सरकार के विभिन्न अंगों और केन्द्र व राज्यों के बीच संतुलन बनाये रखने के लिए संघीय सिद्धांत को बनाए रखना।
3. नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करना।
4. राज्य के विधायी, अर्ध-विधायी, कार्यकारी, या अर्द्ध-न्यायिक कार्रवाईयों की संवैधानिक वैधता सुनिश्चित करना।
5. सरकार द्वारा बनाये गये कानूनों को व्याख्या करना।

सर्वोच्च न्यायालय

भारत के संविधान के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय अदालतों के अनुक्रम में शीर्ष पर है। संघीय सिद्धान्त को बनाए रखना, कानून या कार्यपालिका द्वारा की गई कार्रवाई की वैधता, और नागरिकों के मौलिक अधिकारों को बनाये रखने में, सर्वोच्च न्यायालय एक अन्तिम मध्यस्थ के रूप में काम करता है। सर्वोच्च न्यायालय के तीन अधिकार क्षेत्र हैं– मूल अधिकार क्षेत्र, अपीलिय अधिकार क्षेत्र, और परामर्शी अधिकार क्षेत्र। संवैधानिक योजना के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भारत के अन्य सभी न्यायलयों पर अंतिम और बाध्यकारी है, जिसमें उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालय आते हैं।

भारत का सर्वोच्च न्यायालय न केवल कानूनी अधिकारी से सम्पन्न है, अपितु, नागरिकों के मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए न्यायिक शक्तियाँ भी इसी के अधिकार क्षेत्र में आती है, आमतौर पर जब उनका उल्लंघन होता है। साथ ही, सरकारों के बीच न्यायिक मध्यस्थता करना भी इसी का कार्य है।

भूमिका और कार्य

न्यायपालिका संविधान की संरक्षक होती है और यह सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक कार्य जो हो रहा है वह संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार हो। अनुच्छेद 131 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को संविधान के संघीय सिद्धांत को बनाये रखने का क्षेत्राधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय अपील संबंधी मामलों में सर्वोच्च न्यायालय है और यह सभी दीवानी, आपराधिक, और संवैधानिक मामलों में अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार को उपयोग करता है। सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार होता है कि राष्ट्रपति द्वारा प्रेषित किसी भी सवाल या कानून पर वह सलाह दे सकता है। अनुच्छेद 142 और 145 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 129 के अंतर्गत किसी भी व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय की अवमानना के लिए दंडित भी कर सकता है।

अब हम सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका व कार्य पर चर्चा करेंगे।

प्रारम्भ में हम मूल अधिकार क्षेत्र का वर्णन करेंगे।

मूल अधिकार क्षेत्र (अनुच्छेद 131)

यह उन मामलों से सम्बन्धित है जो सीधे सर्वोच्च न्यायालय में आते हैं। इस अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत विवादित मामलों को निपटाना है, जैसे (क) भारत सरकार और एक या एक से अधिक राज्यों के बीच विवाद, या (ख) भारत सरकार व राज्य या राज्यों, जो एक ओर हैं तथा एक या एक से अधिक राज्यों जो दूसरी ओर हैं, के बीच विवाद, (ग) दो या दो से अधिक राज्यों के बीच विवाद।

अपीलीय क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 132 से 136)

यह निचली न्यायलयों और न्यायाधिकरणों के आदेशों की समीक्षा और संशोधन की शक्ति को संदर्भित करता है। इसका क्षेत्राधिकार उच्च न्यायालय से सम्बन्धित सिविल और आपराधिक दोनों तरह की अपीलों तक विस्तृत है, जिसका प्रमाणीकरण उच्च न्यायालय द्वारा या इसके अभाव में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाता है। आमतौर पर ये अपील कानून से सम्बन्धित सवालों या संविधान की व्याख्या या उच्च न्यायालय द्वारा दी गई मौत की सजा से संबंधित मामलों में होती है।

सलाहकार क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 143)

अनुच्छेद 143 के अंतर्गत, सर्वोच्च न्यायालय में सलाहकार क्षेत्राधिकार की शक्ति निहित की गयी है। राष्ट्रपति सार्वजनिक महत्व के मामलों पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्ष कर सकते हैं। ऐसे में, सर्वोच्च न्यायालय राष्ट्रपति को अपनी सलाह देता है। सर्वोच्च न्यायालय राष्ट्रपति को अपनी राय देने के लिए अस्वीकृति भी व्यक्त कर सकता है। वह राष्ट्रपति के प्रति बाध्यकारी नहीं है।

सर्वोच्च न्यायालय, अभिलेखों के न्यायालय के रूप में (अनुच्छेद 129)

अनुच्छेद 129 के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय अभिलेखों का न्यायालय होगा और इसकी अवमानना में इसे दंडित करने का अधिकार भी होगा। इसे उन लोगों को दंडित करने की शक्ति है, जिन्हें अदालत की अवमानना का दोशी माना जाता है।

विशेष अवकाश द्वारा अपील (अनुच्छेद 136)

अनुच्छेद 136 द्वारा यह शक्ति सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान की गयी है। इसमें सर्वोच्च न्यायलय अपने विवेक से किसी भी अदालत या न्यायाधिकारण द्वारा किसी भी मामले में दिए गए निर्णय, राजाज्ञा, निर्धारण, सजा या आदेश को अपील करने के लिए विशेष छूट दे सकता है।

- **हुक्म-नामा (Writ) का अधिकार क्षेत्र**

सर्वोच्च न्यायालय व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। यह विधायिका द्वारा पारित कानून को नगण्य घोषित कर सकता है, यदि यह संविधान द्वारा लोगों को दिए गए मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करता है। मौलिक अधिकारों को लागू

करने के लिए यह बन्दी प्रत्यक्षीकरण[2], परमादेश[3], उत्प्रेषण[4], प्रत्यादेश[5] और अधिकार पष्च्छा[6] के रूप में हुक्म-नामा की घोषणा कर सकता है।

- **न्यायिक समीक्षा**

उपर्युक्त शक्तियों के अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय के पास न्यायिक समीक्षा की शक्ति भी होती है। इसका तात्पर्य किसी आदेश या कानून की वैधता की समीक्षा करने से है। सर्वोच्च न्यायलय इस बात की पुष्टि करता है कि क्या कानून, कार्यकारी आदेश, या अन्य अधि ाकारिक कार्यवाई लिखित संविधान के विरूद्ध है, और यदि हैं तब इसे असंवैधानिक और नगण्य घोषित करती है।

संविधान में कई विशिष्ट प्रावधान है, जो न्यायिक समीक्षा की गारंटी देते हैं जैसे अनुच्छेद 13, 32,131–136, 143, 145, 226,246, 251, 254, और 372। न्यायिक समीक्षा की शक्ति संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को संरक्षक बनाती है।

गतिविधि

हाल के दिनों में, कार्यपालिका कार्रवाई के क्षेत्रों में सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप को देखा जा सकता है। आप वर्तमान में ऐसे कुछ मामलों की जाँच कर सकते हैं।

न्यायिक सक्रियता

एक प्रख्यात भारतीय न्यायविद निम्नलिखित शब्दों में न्यायिक सक्रियता को परिभाषित करते हैं। ''न्यायिक सक्रियता का अर्थ न्यायिक शक्ति के उपयोग से है, जिससे विपरित विचारधाराओं को स्पष्ट तथा लागू किया जा सके। इन विचारधाराओं के प्रभावी होने पर ये शासन संस्थाओं के भीतर शक्ति संबंधों का महत्वपूर्ण रूप से पुनः वर्गीकरण प्रारम्भ करती हैं। न्यायिक सक्रियता का महत्व तब सामने आता है जब किसी उत्तरदायी सरकार का पतन हो रहा है और न्यायपालिका पर दबाव होता है कि वह ऐसी स्थिति में अपनी अनुक्रिया दें व राजनीतिक या नीति–निर्माण के सम्बन्ध में निर्णय लें। 'न्यायिक सक्रियता' और 'न्यायिक संयम' वे शब्द हैं, जिनका उपयोग न्यायिक शक्ति की दृढ़ता का वर्णन करने के लिए किया जाता है।

---

[2] बन्दी प्रत्यक्षीकरण (हेबियस कार्पस) कानून के अंतर्गत कोई भी व्यक्ति न्यायलय में गैरकानूनी कारणों से हिरासत या कारावास की रिपोर्ट कर सकता है और अनुरोध कर सकता है कि न्यायलय व्यक्ति के परिरक्षक (आमतौर से जेल अधिकारी) को आदेश दे, कि हिरासत वैध है या नहीं निर्धारित करने के लिए, बंदी को न्यायलय में पेश किया जाए।

[3] परमादेश (mandamus) एक न्यायिक उपचार है, जो न्यायलय द्वारा किसी सरकार, अधीनस्थ न्यायालय, निगम या सार्वजनिक प्राधिकरण को कुछ विशिष्ट कार्य करने के लिए लागू किया जाता है। ये ऐसे कार्य होते हैं, जिन्हें कानूनी आधार पर क्रियान्वित करना बाध्य होता है और जो सार्वजनिक कर्तव्य के अंतर्गत आते हैं और कुछ मामलों में संवैधानिक कर्तव्य से भी जुड़े होते हैं।

[4] उत्प्रेषण (Certiorari) एक अधीनस्थ न्यायालय या प्रशासनिक एजेंसी के निर्णय के पुनरावलोकन की यह एक न्यायिक प्रक्रिया है। यह उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किया जाता है कि अधीनस्थ न्यायालय के रिकॉर्ड को पुनरावलोकन के लिए उच्चतम न्यायालय में भेजा जाये।

[5] प्रत्यादेश (Prohibition)यह आदेश प्रायः उच्चतम न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय को निर्देश देता है कि वह ऐसे मामलों को आगे न बढ़ायें, जो उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं आते हैं। अधीनस्थ न्यायलय को कानून के विरूद्ध कुछ भी करने से रोकता है।

[6] अधिकार पष्च्छा (Quo-Warranto) यह एक ऐसा विशेषाधिकार है, जो ऐसे व्यक्ति के प्रति निर्देशित होता है कि वह किस प्राधिकार द्वारा अधिकार व शक्ति का निर्वहन कर रहा है।

जब राज्य के राजनीतिक अंग अपने संवैधानिक दायित्वों का प्रभावी ढंग से निर्वहन करने में विफल होते हैं या वे सामाजिक और आर्थिक न्याय के मूल्यों के प्रति उदासीन रहते हैं, ऐसे में न्यायपालिका एक नीति निर्माता, विधायक, और यहाँ तक कि सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए यह अपने दिशा–निदेर्शों के कार्यान्वयन के लिए जाँचकर्ता की भूमिका भी निभाती है। हाल के दशकों में, शीर्षस्थ अदालत ने स्वयं को 'कानून का निर्माता' व 'व्याख्या करने वाली संस्था' के रूप में रूपान्तरित कर लिया है।

न्यायिक सक्रियता के कारण

1. एक उत्तरदायी सरकार होने में विफलता

जब राज्य के राजनीतिक अंग अपने संवैधानिक दायित्वों का प्रभावी ढंग से निर्वहन करने में विफल होते हैं या वे सामाजिक और आर्थिक न्याय के मूल्यों के प्रति उदासीन रहते हैं, ऐसे में न्यायपालिका एक नीति निर्माता, विधायक, और यहाँ तक कि सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए यह अपने दिशा–निदेर्शों के कार्यान्वयन के लिए जाँचकर्ता की भूमिका भी निभाती है।

2. नागरिकों के लिए मौलिक अधिकार लागू कराना

यदि सरकार या उसकी कोई भी एजेंसी नागरिकों के मौलिक अधिकारों का हनन करती है, तब नागरिक अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए उच्च न्यायालय/सर्वोच्च न्यायालय की ओर रूख कर सकते हैं।

3. सामाजिक सुधार और परिवर्तन में भाग लेने के लिए न्यायिक उत्साह

न्यायालय सामाजिक भेदभाव के मामलों को स्वयं लेकर इनके विरूद्ध सुधारात्मक कार्रवाई करता है।

4. न्यायिक हस्तक्षेप के लिए संवैधानिक योजना

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 13 में न्यायपालिका को अंर्तनिहित रूप से सषक्त बनाया है। न्यायपालिका मौलिक अधिकारों की कसौटी पर किसी भी कानून की वैधता की समीक्षा करती है और यदि इन अधिकारों का उल्लंघन कोई कानून करता है, तब न्यायपालिका उसे नगण्य घोषित करती है। अनुच्छेद 32 के अंतर्गत, कोई भी व्यक्ति, जिसके मौलिक अधिकारों का राज्य द्वारा उल्लंघन किया गया है, वह अपने इन अधिकारों को पुनः लागू करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के पास जा सकता है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 32 के अंतर्गत ही सर्वोच्च न्यायालय के पास आने का अधिकार स्वयं में एक मौलिक अधिकार है, जिसे 'संवैधानिक उपचारों का अधिकार' के नाम से जाना जाता है।

जनहित याचिका (PIL)

गरीबी, अशिक्षा, और अज्ञानता के कारण अनगिनत अनपढ़ और अज्ञानी जनता अपने अधिकारों और हितों को नहीं जानती थी तथा अदालत के माध्यम से इन्हें प्राप्त करने के बारे में भी कोई जानकारी नहीं होती थी। सर्वोच्च न्यायालय की इन समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता के कारण भारत में जनहित याचिका (पी.आई.एल.) का निर्गमन हुआ। सर्वोच्च न्यायालय को इस ओर एक सजग प्रेस, सामाजिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों, और गैर-सरकारी संगठनों का सहयोग प्राप्त हुआ। जनहित याचिका मुख्य रूप से भारत के

संविधान के अनुच्छेद 32[7] / अनुच्छेद 226[8] के अंतर्गत दिए गए उपचारों से सम्बन्धित है। भारत में जनहित याचिका उभरने के कई कारण हैं। इसमें सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित नागरिक, कर दाता और उनके अधिकार, सार्वजनिक अधिकार का उल्लंघन, कैदियों, श्रमिकों, पेंशन भोगियों, उपभोक्ताओं, पर्यावरण प्रदूषण से पीड़ित लोगों के अधिकार, और ऐसे अन्य कारक सम्मिलित है, जिन्होंने न्यायालयों के नवाचार करने की इच्छा को प्रदर्षित किया और इन लोगों को मुफ्त कानूनी सहायता के अधिकार की गारंटी दी।

जनहित याचिका (पी.आई.एल.)[9] भारत के सर्वोच्च न्यायालय का एक संस्थागत नवाचार है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस नए उपकरण के संस्थागतकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे भारत में इस अवधारणा का उद्भव 1980 के दशक में हुआ। 'हस्तक्षेप का अधिकार' एक सख्त नियम होने के कारण इस उपकरण द्वारा इसे उदार बनाया गया है। एक चिन्तित एवं इच्छुक न्यायपालिका द्वारा सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित वर्गों, जो अपनी निरक्षरता, गरीबी, और अज्ञानता के कारण न्याय के लिए न्यायालय में नहीं पहुँच सकते थे, को मदद करने के लिए किया गया।

न्यायालय ने नागरिकों, संस्थानों, और न्यायाधीशों की मदद से जनहित याचिका के रूप में एक नये प्रकार की याचिका को प्रारम्भ किया। न्यायालय ने अपने संस्थापित कार्यप्रणाली और सिद्धान्तों से हटकर, इसने अब न केवल पीड़ित व्यक्तियों को बल्कि लोकहित युक्त व्यक्तियों और संस्थानों को भी यह अधिकार दिया है कि वे वंचित वर्गों के अधिकारों को लागू करने के लिए इस याचिका का प्रयोग कर सकते हैं। जनहित याचिका ने याचिकाकर्ता, राज्य और न्यायालय को एक सहयोगी प्रयास में गठित किया है। न्यायालय इस विधि से यह सुनिश्चित करता है कि राज्य अधिकारियों के द्वारा कमजोर वर्गों को प्रदान किए गए संवैधानिक विशेषाधिकारों का अनुपालन हो रहा है, जिससे समुदाय सामाजिक न्याय प्राप्त करने में सक्षम हों।

जब से जनहित याचिका को संस्थागत रूप मिला है, न्यायिक सक्रियता का पुनरूत्थान हुआ है। अब न्याय करने के अधिकार में लचीलापन आ गया है, जिसके द्वारा लोगों की समस्याओं का आसानी से निपटान हो रहा है। इसके कारण सर्वोच्च न्यायालय एक प्रमुख न्यायिक संस्थान बन गया है, जो सरकार पर प्रभावी रूप से दबाव बनाए रखता है।

जनहित याचिका ने यह सुनिश्चित किया है कि प्रशासन लोगों के प्रति जवाबदेही है, और सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में कानून का शासन है। साथ ही, इसने स्वतंत्र न्यायपालिका को भी सुनिश्चित किया है।

वास्तव में जनहित याचिका का दायरा विस्तृत हो गया है। आज हमारे पास बड़ी मात्रा में जनहित याचिकायें हैं, जो लोगों द्वारा कानून के शासन को बनाये रखने में तथा मंत्रियों और नौकरशाहों द्वारा प्रशासनिक विवेक के समुचित अभ्यास को सुनिश्चित करने के लिए दायर किए गए हैं। जनहित याचिका ने एक और उल्लेखनीय योगदान दिया है, जिसके अंतर्गत मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने पर पीड़ितों को पर्याप्त मौद्रिक क्षतिपूर्ति के भुगतान का भी प्रावधान है।

---

[7] अनुच्छेद 32 के अंतर्गत, यदि राज्य द्वारा किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है, तो वह व्यक्ति प्रर्वतन के लिए सर्वाच्च न्यायालय में अपील कर सकता है।

[8] अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों के प्रर्वतन या किसी अन्य उद्देश्य के लिए निर्देश, आदेश या रिट जारी करने का अधिकार देता है।

[9] 1980 के दशक में, सर्वोच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों जैसे वी.आर. कष्ण अय्यर, पी.एन. भगवती, और ओ. चिन्नप्पा रेड्डी ने कुछ साहसिक और नयी पहल की, जिनकी परिणति अंततः जनहित याचिका (PIL) में हुई। जनहित याचिका को 'सोशल एक्शन लिटिगेशन' और रेप्रिजेनटॅटिव लिटिगेशन के नाम से भी जाना जाता है, जिनका उद्देश्य देश के गरीब, निरक्षक, और अन्य सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित वर्गों को न्याय प्रदान करना है।

यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि न्यायपालिका ने संविधान के अनुच्छेद 21 के दायरे का विस्तार करने में एक अभूतपूर्व गतिशीलता निभाई है। जनहित याचिका के कारण सर्वोच्च न्यायालय ने सरकारी घोटालों पर महत्वपूर्ण निर्णय दिये हैं, जैसे यूपीए-2 के शासन में कोयला खदानों के आवंटन का केस, 2जी स्पेक्ट्रम का केस, कॉमन वेल्थ गेम्स घोटाला केस आदि।

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि न्यायपालिका ने सरकार को कार्य करने के लिए निर्देश दिए हैं और अधिकारियों को अपने उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए मजबूर किया है।

न्यायिक सक्रियता के द्वारा न्यायालय नागरिकों के अधिकारों के संरक्षक के रूप में संविधान के चरित्र को बनाये और संरक्षित किए हुए हैं। हालांकि, न्यायपालिका की आलोचना भी हुई है कि उसने पी.आई.एल. और न्यायिक सक्रियता के नाम पर न्यायालय ने अत्यधिक सक्रियता तथा अतिक्रमण किया है।

गतिविधि

आप एक न्यायिक निर्णय का वर्णन कर सकते हैं, जो पी.आई.एल. पर आधारित है/थी।

सारांश

न्यायपालिका शासन का एक अनिवार्य अंग है। न्यायपालिका, समाज को न्याय देने के लिए बनायी गई एक सर्वश्रेष्ठ संस्था है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने एक ऐसी न्यायिक प्रणाली की कल्पना की थी, जो कार्यपालिका व व्यवस्थापिका के नियन्त्रण से स्वतन्त्र होगी। भारत के संविधान ने सभी राज्य और केंद्र शासित प्रदेशों में समेकिक न्यायिक प्रणाली को प्रारम्भ किया है। इसने तीन स्तरीय न्यायिक प्रणाली को प्रस्तुत किया। भारत का सर्वोच्च न्यायालय, जो देश का सर्वोच्च न्यायालय है; उच्च न्यायालय, जो राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में है; और हर राज्य और केन्द्र शासित प्रदेश में एक अधीनस्थ न्यायपालिका।

वर्तमान समय में, न्यायिक सक्रियता को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है, विशेष रूप से मानव अधिकारों का उल्लंघन, महिलाओं और बाल श्रम कानूनों का उल्लंघन, हिरासत के नियमों का उल्लंघन, पर्यावरण प्रदूषण आदि से सम्बन्धित मामलों में। जनहित याचिका प्रशासकों की जवाबदेहीता और सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में कानून के शासन का पालन को सुनिश्चित करती है।

संदर्भ लेख

1) Bakshi, P.M., 2004, The Constitution of India, Universal Law Publishing Co. Ltd., Delhi
2) Bhagwati, P.N., 1985, Judicial Activism and Public Interest Litigation, Jagrut Bharat Press, New Delhi
3) Bhatia, K.L., 1997, Judicial Activism and Social Change, Deep & Deep, New Delhi
4) Iyer, V. R. Krishna, 1994, Justice at Cross Roads, Deep & Deep, New Delhi
5) Kashyap, Subhash C., 1988, Parliament of India Myths and Realities, National Publishers, New Delhi.
6) Reddy G. B., 2001, Judicial Activism in India, Gogia Law Agency, Hyderabad